

रसकपूर

(ऐतिहासिक उपन्यास)

ध्यान माखीजा



उमेश प्रकाशन

5, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली 6



- ⊙ प्रकाशक
उमेश प्रकाशन,
5-वी, नाथ मार्केट, नई सडक, दिल्ली-110006
- ⊙ मुद्रक :
प्रिंट आर्ट,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
- ⊙ सम्करण
प्रथम, (जुलाई, 1978)
- ⊙ मूल्य
आठ रुपये

RASKAPOOR (A Historical Fiction)
by Dhyan Makhija
Rs. 8 00

ऐतिहासिक सच्चाई

उस दिन मैं आमेर स्थित सिलादेवी मन्दिर के पुजारी की बातें सुनकर विस्मय में आ गया था। सितार के तारों को छेड़ते समय अचानक उन्होंने मुझसे कहा था—‘जानते हो, आमेर की इन पहाड़ियों का भी अपना एक इतिहास है। न जाने कितने रहस्य ये अपने गर्भ में छुपाए बैठी हैं।’

पुजारी की बात चौंका देने वाली थी।

फिर तो मैं पहाड़ियों में छिपे हुए रहस्यों की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न में पूरी तन्मयता के साथ जुट गया। और तब मुझे यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि इन्हीं पहाड़ियों में एक ‘अतृप्त आत्मा’ अब भी अपने प्रियतम को ढूँढ़ती हुई भटक रही है।

शायद इसे मेरी कोरी कल्पना या मात्र भ्रम ही कहा जायेगा परन्तु यह शाश्वत सत्य है कि ‘आत्मा’ का अस्तित्व है। इसके अस्तित्व को चूँकि गीता या शास्त्रों में भी स्वीकारा गया है, इसलिए नकारा नहीं जा सकता, ऐसी बात नहीं है। आज भी ‘आत्मा’ के अस्तित्व का वर्णन यदा-कदा पढ़ने-सुनने को हमें मिलता है।

सर ओलिवर लॉज और सर विलियम कुकुस ब्रिटेन के माने हुए वैज्ञानिक हो चुके हैं। ‘ईयर’ तत्त्व का पदार्थ के साथ क्या सम्बन्ध है, इस विषय पर सर लॉज का अन्वेषण आज भी प्रामाणिक माना जाता है। सर लॉज और सर कुकुस दोनों ही वैज्ञानिकों ने ‘आत्मा’ के अस्तित्व और मरणोत्तर जीवन की यथार्थता को पूरी तरह से स्वीकार किया है। सर लॉज का पुत्र रेमण्ड प्रथम विश्व युद्ध में मारा गया था, परन्तु मरने के बाद भी पुत्र की ‘आत्मा’ का अपने पिता से निरन्तर सम्पर्क बना रहा और उस आत्मा ने अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ अपने पिता को दी। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर सर लॉज को अपने अन्वेषण-कार्यों में काफी

सहायता मिली ।

इंग्लैंड के प्रमुख पत्र 'ईवनिंग पोस्ट' के सम्पादक विलियम कुलेन ओमेर तथा प्रख्यात उपन्यासकार विलियम थैकरे जैसे विद्वानों ने भी 'आत्मा' के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए अनेक सस्मरण लिखे हैं ।

वम्बई से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'धर्मयुग' में भी 'आत्मा' की यथार्थता को स्वीकारते हुए एक लेखमाला प्रकाशित हो चुकी है । 'उत्तरा वनाम शारदा' नामक इस लेखमाला में बताया गया था कि नागपुर में रहने वाली उत्तरा के शरीर में कभी-कभी कोई दूसरी 'आत्मा' प्रविष्ट हो जाती थी, और उस समय वह युवती १५० वर्ष पूर्व की एक बंगाली लड़की शारदा के रूप में परिवर्तित हो जाती थी । तब वह विशुद्ध बंगाली भाषा बोलने लगती थी । थोड़ी देर बाद अपनी पूर्ववस्था में आ जाने पर वह सब कुछ भूल जाती थी और पुनः उत्तरा बन जाती थी ।

प्रस्तुत उपन्यास में भी 'रसकपूर' की 'आत्मा' की ही कहानी है— वह आत्मा जो अपने प्रेमी महाराजा को आज भी आमेर के खण्डहरो में दूढ़ रही है ।

इस उपन्यास में जयपुर के खजाने का भी उल्लेख आया है । इतिहास साक्षी है कि शहशाह अकबर का सेनापति और उसकी राजस्थानी पत्नी का भाई महाराजा मानसिंह अद्भुत पराक्रमी योद्धा एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति था । उसने मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिये आसाम, बंगाल तथा अफगानिस्तान में अनेक युद्ध लड़े थे और विजित रहा था । इन युद्धों में उम्रे लूट तथा मुआवजे के रूप में अपार सम्पदा हाथ लगी थी । एक किंवदन्ति के अनुसार तो महाराजा मानसिंह काबुल से अशफियों, स्वर्ण मुद्राओं और हीरे-जवाहरात का एक विशाल जखीरा ऊटो के काफिले पर लादकर जयपुर लाया था । उसके बाद भी मानसिंह से लेकर सवाई जयसिंह तक की पीढ़ियों ने निरन्तर इस खजाने में वृद्धि की । और फिर एकाएक खजाने का यह विशाल भण्डार न जाने कहाँ लुप्त हो गया । विश्वस्त सूत्रों के आधार पर ऐसा लगता है, यह खजाना कहीं जमींदोज

कर दिया गया था।

खजाने की खोज के लिये कई व्यक्तियों ने जी-तोड़ कोशिशों की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। यहाँ तक कि इमर्जेंसी के दौरान तत्कालीन केन्द्रीय सरकार ने भी लाखों रुपये व्यय करके इस खजाने को ढूँढ निकालने की व्यापक खोज करवायी, परन्तु उसे भी निराश होना पड़ा।

इस उपन्यास का नायक महाराजा जगतसिंह १८०३ ई० में जयपुर की राजगद्दी पर बैठा था और मात्र बत्तीस वर्ष की अवस्था में ही स्वर्ग सिंघार गया था। अपने अल्प जीवन-काल में उसे अनेक युद्ध लड़ने पड़े थे।

युवा राजा कलाप्रेमी तो था ही, एक परम सुन्दरी नर्तकी के प्रेमपाश में वह बुरी तरह से जकड़ गया। रसकपूर नामक यह सुन्दरी नृत्य में पारंगत होने के साथ-साथ एक अच्छी गायिका भी थी। महाराजा जगतसिंह ने रसकपूर को रानी के रूप में स्थापित करने की भरपूर चेष्टा की, उसके नाम का सिक्का भी चलाया, परन्तु अपने सामन्तों के घोर विरोध के कारण उसे मुह की खानी पड़ी।

रसकपूर बौन थी, जयपुर में कैसे और कहा से आई थी, इसका इतिहास नहीं मिलता। नाहरगढ़ किले की कैद में से भागकर वह कहा चली गई थी, इसका भी इतिहास में उल्लेख नहीं है। राजस्थान-इतिहास के विशेषज्ञ कर्नल टॉड और डा० शर्मा केवल इतना ही लिखते हैं कि वह अद्भुत सुन्दरी, नृत्यप्रवीणा और कोकिल-कण्ठा थी और महाराजा जगतसिंह उस पर दिलोजान से न्यौछावर था।

मुझे इस बात का सन्तोष है कि मैंने इतिहास की सच्चाई को ईमान-दारी से कायम रखते हुए इस उपन्यास की रचना की है।

राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष डा० माथुर लाल शर्मा का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने इतिहास के सही तथ्यों की जानकारी कराकर मुझे पूरा सहयोग दिया।

जयपुर

—ध्यान माखीजा

रसकपूर

जयपुर नगर देश के अन्य नगरों की तरह टेढ़ी-मेढ़ी, घुमावदार भटका देने वाली गलियों वाला शहर नहीं है। और न ही इस शहर में ठूठनुमा गिरते-पड़ते वेढगे मकानों की बेतरतीब कतारे हैं। ज्यामितिक कौशल द्वारा निर्मित इस शहर में ऊँची-ऊँची गगनचुम्बी इमारतें भी नहीं हैं। यहाँ एक-दूसरे को समकोणों पर काटते हुए सीधे रास्तों के दोनों ओर एक विशिष्ट स्थापत्य शिल्प से चौकोर डिब्बेनुमा इमारतें बनी हुई हैं। इस गुलाबी शहर को नाहरगढ़ किले की पहाड़ी से देखने से ऐसा लगता है, जैसे पहाड़ की तलहटी में किसी नये बनाये जाने वाले शहर का एक सुन्दर 'माडल' रखा हुआ है।

मैं, विश्व की एकमात्र इस गुलाबी नगरी को नाहरगढ़ किले की प्राचीर से ठगा-सा देख रहा था। समूचा शहर गुलाबी चुनरी में सजी-सजायी दुल्हन की तरह लग रहा था। शहर के चारों तरफ ऊँचा परकोटा था। परकोटे के बाहर नगर-न्यास द्वारा निर्मित नयी वस्तियाँ सखियों की तरह दुल्हिन को चारों ओर से घेरे हुए खड़ी थी।

दिन का अभी पहला पहर समाप्त हुआ था। छोटी-छोटी झरोखेनुमा खिड़कियों के लाल-पीले-हरे काच सूर्य की श्वेत किरणों को विभिन्न रंगों में रंगकर गुलाबी दीवारों पर बिखेर रहे थे। छतों पर अपने गीले बालों को सुखा रही तरणियों के पायलों की छम छम आवाज, चमकारे मार रहे नाक के हीरे, नीचे फेरी लगानेवालों को जोर-जोर से आवाज लगाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। आवाज मुनकर कोई तरुणी मुँडेर पर हाथ

कोई उड़ता हुआ कपड़ा छू गया। ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी तरुणी की साडी का आचल मेरे बालों को बिखेरता हुआ चला गया था। ऊँचे दर्जे की भीनी-भीनी खुशबू भी मेरी नासिका से टकराई। मैंने आगे-पीछे, दायें-बायें सब तरफ देख डाला, पर कहीं कोई व्यक्ति नजर नहीं आया। फिर बार-बार यह किमका आचल मुझे छू जाता है? अचानक मैं भयभीत हो उठा, उर के मारे मेरी कपकपी छूटने लगी। मैं एक ही छलाग में दीवार से नीचे आ गया और सरपट नीचे की ओर भागा। पीछे मुड़कर देखने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। नीचे आवादी में पहुँचकर ही मैंने छूटकारे की सास ली।

मेरी मन स्थिति घर लौटने की नहीं थी। मैं अपने को सहज करने और इस रहस्य को किसी के सामने उद्घाटित करने के उद्देश्य से अपने एक अतरंग मित्र पकज के घर पहुँचा।

मेरी बात सुनकर बजाय चीकने के मेरा मित्र हस पड़ा। “तुम भी कमाल के बहमी हो यार! भला ऐसा भी कभी हुआ है? कोई दिखाई दे नहीं और उसके कपड़े छू जाए।”

“पकज! मेरी बात पर विश्वास करो। एक बार नहीं, दो बार किसी अदृश्य युवती की साडी का आचल मुझे छू गया था। साथ में भीनी-भीनी सेट की खुशबू भी आई थी।”

पकज और जोर से हस पड़ा, “अभी तक तो केवल पड़ा ही था कि कुछ लोग दिवास्वप्न देखने के आदी होते हैं, परन्तु आज इसे साक्षात् देख रहा हूँ। किसी रमणी की साडी का आचल छू गया था भीनी-भीनी खुशबू आई थी! भाई बाह! कमाल का स्वप्न है! मजा आ गया।”

“तुम मजाक समझ रहे हो और यहाँ मेरी हालत खराब हो रही है। पकज, मैं सच कह रहा हूँ, नाहरगढ़ किले में आज किसी के आचल ने मुझे दो बार छुआ है।”

पकज ने चेहरे पर कृत्रिम गम्भीरता लाते हुए कहा, “मजाक नहीं समझ रहा हूँ, सही कह रहा हूँ। अवश्य ही तुम्हें वहम हो गया है। पुराने किलो-

टेककर नीचे भाकती और अपनी गोरी कलाई हिलाकर फेरीवाले को रुक जाने का इशारा कर देती। जब तक फेरीवाला दहलीज पर अपना अस-बाव टिकाता, छम छम करती हुई तक्षणी अपनी ननदो-जेठानियो के साथ पट-पट सीढिया उतरती हुई नीचे पहुच जाती।

मैं इस सुंदर नगरी के सौन्दर्य को निहारने में खोया हुआ था कि अचानक एक उड़ते हुए कपड़े की छान पाकर मैं चौक उठा। हवा के एक झोके के साथ एक उड़ता हुआ कपड़ा मेरी पीठ को छू गया था। मैंने मुडकर देखा, पर वहा मुझे कोई दिखाई नहीं दिया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं जिस दीवार पर खड़ा था, उसकी चौड़ाई भी इतनी नहीं थी कि कोई अन्य वहा से गुजर पाता। मैंने नीचे भाककर देखा, किन्तु वहा भी कोई कपड़ा दिखाई नहीं दिया। मुझे बहुत अजीब लगा, पर फिर मैं इसे भ्रम समझकर पुन आखो के नीचे विछे जयपुर शहर को देखने लगा।

बहुत सोच-विचारकर योजनापूर्वक बसाया गया था जयपुर। तीन बड़े आयताकार क्षेत्रों में सीधी गलिया छोड़कर, एक-दूसरे को देखते हुए चतुर्भुजाकार डिब्बों सरीखे मकान बनाये गये थे। हर मोहल्ले में ऊँची गुम्बजों वाले मंदिर बने हुए थे, जिन पर विभिन्न पताकाएँ फहरा रही थी। सीधी ड्योढी बाजार में बने हवामहल के पीछे 'चन्द्रमहल' किसी अलसा रही रमणी की तरह लग रहा था। उस पर फहरा रहा सामंती ध्वज माये पर लगी विद्या की तरह झिलमिला रहा था। मकानों के बरामदों एवं मुंडेरों के कंगूरे हार की लड़ी की तरह शहर को पिरोये हुए थे। गलिया इतनी सीधी कि एक छोर पर खड़े हो जाओ तो शहर का दूसरा छोर दिखाई दे जाए। सारे शहर का नक्शा कुछ ऐसा लग रहा था, जैसे किसी सिद्धहस्त हलवाई ने थाल में सीधे चीरे लगाकर बँफिया काटी हो।

दूर मोती डूंगरी, जिसे तख्तेशाही भी कहा जाता है, दिखाई दे रहा था। उसके दाहिने ओर रामबाग महल था।

सन्-सन् करती हुई हवा का एक झोका आया और मेरी पीठ को फिर

टेककर नीचे भाकती और अपनी गोरी कलाई हिलाकर फेरीवाले को रुक जाने का इशारा कर देती। जब तक फेरीवाला दहलीज पर अपना अस-वाव टिकाता, छम छम करती हुई तरुणी अपनी ननदो-जेठानियो के साथ पट-पट सीढिया उतरती हुई नीचे पहुच जाती।

मैं इस सुंदर नगरी के सौन्दर्य को निहारने में खोया हुआ था कि अचानक एक उड़ते हुए कपड़े की छान पाकर मैं चौंक उठा। हवा के एक झोंके के साथ एक उड़ता हुआ कपड़ा मेरी पीठ को छू गया था। मैंने मुडकर देखा, पर वहा मुझे कोई दिखाई नहीं दिया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं जिस दीवार पर खड़ा था, उसकी चौड़ाई भी इतनी नहीं थी कि कोई अन्य वहा से गुजर पाता। मैंने नीचे भाककर देखा, किन्तु वहा भी कोई कपड़ा दिखाई नहीं दिया। मुझे बहुत अजीब लगा, पर फिर मैं इसे भ्रम समझकर पुन आखो के नीचे बिछे जयपुर शहर को देखने लगा।

बहुत सोच-विचारकर योजनापूर्वक बसाया गया था जयपुर। तीन बड़े आयताकार क्षेत्रों में सीधी गलिया छोडकर, एक-दूसरे को देखते हुए चतुर्भुजाकार डिब्बों सरीखे मकान बनाये गये थे। हर मोहल्ले में ऊंची गुम्बजों वाले मंदिर बने हुए थे, जिन पर विभिन्न पताकाएँ फहरा रही थीं। सीधी ड़ोही बाजार में बने हवामहल के पीछे 'चन्द्रमहल' किसी अलमा ग़्ही रमणी की तरह लग रहा था। उस पर फहरा रहा सामंती ध्वज माथे पर लगी विद्या की तरह झिलमिला रहा था। मकानों के बरामदों एवं मुंडेरों के कंगूरे हार की लड़ी की तरह शहर को पिरोये हुए थे। गलिया इतनी सीधी कि एक छोर पर खड़े हो जाओ तो शहर का दूसरा छोर दिखाई दे जाए। मारे शहर का नक्शा कुछ ऐसा लग रहा था, जैसे किसी सिद्धहस्त हलवाई ने थाल में सीधे चीरे लगाकर बर्फिया काटी हो।

दूर मोती ढूंगरी, जिसे तख्तेशाही भी कहा जाता है, दिखाई दे रहा था। उसके दाहिने ओर रामबाग महल था।

सन्-मन् करती हुई हवा का एक झोंका आया और मेरी पीठ को फिर

कोई उड़ता हुआ कपड़ा छू गया। ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी तरुणी की साड़ी का आचल मेरे बालों को बिखेरता हुआ चला गया था। ऊँचे दर्जे की भीनी-भीनी खुशबू भी मेरी नासिका से टकराई। मैंने आगे-पीछे, दाये-बाये सब तरफ देख डाला, पर कहीं कोई व्यक्ति नजर नहीं आया। फिर बार-बार यह किसका आचल मुझे छू जाता है? अचानक मैं भयभीत हो उठा, उर के मारे मेरी कपकपी छूटने लगी। मैं एक ही छलाग में दीवार से नीचे आ गया और सरपट नीचे की ओर भागा। पीछे मुड़कर देखने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। नीचे आवादी में पहुँचकर ही मैंने छूटकारे की सास ली।

मेरी मन स्थिति घर लौटने की नहीं थी। मैं अपने को सहज करने और इस रहस्य को किसी के सामने उद्घाटित करने के उद्देश्य से अपने एक अंतरंग मित्र पकज के घर पहुँचा।

मेरी बात सुनकर बजाय चौकने के मेरा मित्र हस पड़ा। “तुम भी कमाल के वहमी हो यार! भला ऐसा भी कभी हुआ है? कोई दिखाई दे नहीं और उसके कपड़े छू जाए।”

“पकज! मेरी बात पर विश्वास करो। एक बार नहीं, दो बार किसी अदृश्य युवती की साड़ी का आचल मुझे छू गया था। साथ में भीनी-भीनी सेट की खुशबू भी आई थी।”

पकज और जोर से हस पड़ा, “अभी तक तो केवल पढ़ा ही था कि कुछ लोग दिवास्वप्न देखने के आदी होते हैं, परन्तु आज इसे साक्षात् देख रहा हूँ। किसी रमणी की साड़ी का आचल छू गया था भीनी-भीनी खुशबू आई थी। भाई बाह! कमाल का स्वप्न है! मजा आ गया।”

“तुम मजाक समझ रहे हो और यहाँ मेरी हालत खराब हो रही है। पकज, मैं सच कह रहा हूँ, नाहरगढ़ किले में आज किसी के आचल ने मुझे दो बार छुआ है।”

पकज ने चेहरे पर कृत्रिम गम्भीरता लाते हुए कहा, “मजाक नहीं समझ रहा हूँ, सही कह रहा हूँ। अवश्य ही तुम्हें वहम हो गया है। पुराने किलो-

महलो में अक्सर प्रेतात्माएँ भटकती रहती हैं, ऐसी एक भ्रामक धारणा बन गयी है। तुम भी इस धारणा के शिकार हो गये हो। कोई आचल-वाचल नहीं होगा दोस्त, तुम्हें अवश्य भ्रम हुआ है।”

मैं अपने मित्र को किसी भी प्रकार यकीन नहीं दिला सका कि आचल की छान का मेरा वह अनुभव वास्तविक था। मैंने उससे आगे तर्क करना उचित नहीं समझा और चुप हो गया।

मेरी मनोदशा का गलत आकलन कर मेरा मित्र मुझे मनोविज्ञान का भाषण देता हुआ टहलाने ले गया।

हम घूमते हुए बड़ी चौपड़ के पास अवस्थित रामचन्द्रजी के मंदिर में पहुँचे।

मुख्य द्वार में प्रवेश करने ही हमें बायीं ओर के अहाते की तरफ से एक अजीब तरह के शोरगुल की आवाज़ सुनायी दी। भगवानों को दूर से ही नमन करके हम दोनों भी उस शोर की ओर बढ़ गये।

भीड़ को चीरकर जब हम अंदर पहुँचे, बड़ा ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया। सामने जो कुछ हो रहा था, उसे देखकर मेरा मित्र तो दग रह गया।

एक युवक फर्श पर पालथी लगाकर बैठा हुआ जोर-जोर से अपना मिर हिला रहा था। वह मुह से भी कुछ अस्पष्ट-सा बड़बड़ा रहा था। युवक को चारों ओर से घेरे खड़े लोग कह रहे थे—“देवी आई है देवी आई है।”

युवक का मिर हिलाना जोर पकड़ता जा रहा था। अब वह अपने हाथ-पाव भी फटकारने लग गया था।

“आ गये। आ गये। पलितजी आ गये।” भीड़ में से कोई बोल उठा।

देवी को उतारने के लिए किसी ओम्हा को बुलाया गया था।

पलितजी ने आते ही अपनी कार्रवाई शुरू कर दी। उन्होंने मंत्र बोलते हुए युवक को स्थिर करने का प्रयास किया, परन्तु युवक का हाथ-पाव फटकारना कम नहीं हुआ।

“देवी नहीं है, यह तो कोई प्रेतात्मा है।” कहकर पडितजी ने प्रेतात्मा को भगाने के लिए आवश्यक मामग्री मगवायी। मामग्री में एक नारियल भी शामिल था। पडितजी पुन दूसरे प्रकार के मन्त्र पढ़ने लगे। एकाएक मन्त्र बोलना रोककर पडितजी जोर-जोर से बोलने लगे, “बोल ! बोल, तू क्या चाहती है ? जल्दी बोल !”

मन्त्रों का असर हुआ, भूम रहे युवक ने एक जोर का फटकारा मारा और नारी-स्वर में बोला, “इत्र दे राजन्, इत्र दे ! मुझे इत्र दे दे राजन् !”

पडितजी रुक गये और जो व्यक्ति उन्हें बुलाकर लाया था, उससे पूछा, “क्या इसके पास इत्र है ?”

युवक के साथी ने बताया कि उसने जयगढ किला देखने के बाद आमेर से लौटते हुए इत्र खरीदा था।

पडितजी ने युवक की जेब टटोलकर इत्र की शीशी निकाली। फिर उन्होंने नारियल को फोड़कर दो भागों में विभक्त किया और पुन मन्त्र पढ़ने लगे। मन्त्र बोलने के साथ-साथ नारियल में शीशी का इत्र उड़ेलने लगे। पडितजी जोर-जोर से बोलने लगे, “ले, इत्र ले और वापस जा ! ले अपना इत्र !”

युवक का भूमना धीरे-धीरे कम होने लगा। शीशी का सम्पूर्ण इत्र नारियल में पहुँचने के साथ ही, युवक का भूमना विलकुल बंद हो गया।

पडितजी ने इत्र को नारियल में बंद किया और एक डोर में नारियल बांधकर युवक के साथी से उसे वापस आमेर की पहाड़ियों में फेंक आने के लिए कहा।

अब तक प्रेतात्माओं का अस्तित्व नकारने वाले मेरे मित्र के चेहरे पर हवाइया उड़ रही थी। अपनी आँखों के सामने प्रेतात्मा का अस्तित्व देखकर उसने चेहरे की रंगत उड़ गयी थी। वह हैरत में था।

लेकिन उस घटना से मेरी मनोदशा और अधिक बिगड़ गयी। मैं अपने मित्र का मनोविज्ञान भूलकर नाहरगढ़ किले और अब वहाँ आई प्रेतात्मा

मे सम्बन्ध जोड़ने लगा। मैं सोच रहा था, क्या नाहरगढ़ किले में मुझे अपना आचल छोड़ने वाली और आमेर महल से जयपुर में इत्र लेने के लिए आई दोनों प्रेतात्माएँ एक ही हैं? किले में आचल की छुअन के माथ-साथ इत्र की भीनी-भीनी खुगवू भी तो आई थी। अवश्य ही यहाँ वही आत्मा आई थी। मैं पुनः भयभीत हो उठा, मेरी कपकपी फिर छूटने लगी।

मेरा मित्र, जिसके चेहरे पर आत्मा के अस्तित्व के बोध का भाव अब स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा था, मुझे मंदिर के बाहर ले आया। उसने पंडितजी को रोककर नाहरगढ़ किले में मेरे साथ घटित घटना सुनाई और साथ ही अपनी गंका भी व्यक्त की।

हमारी बात को सुनकर पंडितजी पहले तो किंचित् गंभीर हो उठे, फिर उन्होंने हम दोनों को 'आत्मा' का रहस्य समझाया।

पंडितजी ने हमें बताया—“आत्मा का अस्तित्व शाश्वत सत्य है। आत्मा शरीर धारण करती है। शरीर-धारण के पूर्व तथा शरीर को त्यागने के बाद भी आत्मा क्रियाशील रहती है। जब आत्मा शरीर धारण करती है तब उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। उस समय एकमायावी शक्ति उस पर हावी रहती है। शरीर को त्याग करने के बाद आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व पुनः कायम हो जाता है। कभी-कभी शरीर छोड़ देने के बाद भी आत्मा शरीर वाले परिवेश को बनाये रखना चाहती है। असल में ऐसा चाहने वाली आत्माएँ शरीर छोड़ते समय अतृप्त रह जाती हैं। तब ये शरीर वाले परिवेश की पुनः प्राप्ति हेतु भटकती रहती हैं। कभी-कभी ऐसी आत्माएँ अपने त्यागे हुए शरीर को धारण किये हुए भी दिखायी दे जाती हैं। ये आत्माएँ अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति में सचेष्ट रहती हैं। कभी ये अदृश्य रहकर चेष्टाएँ करती हैं और कभी किसी के शरीर पर हावी होकर, जैसा कि अभी आप लोगो ने देखा।”

पंडितजी की बात सुनकर मेरे मस्तिष्क में विचित्र-विचित्र विचार कौंधने लगे।

मारे प्रकरण में पकज भी बुरी तरह विचलित हो गया था। उसे अपना

मनोविज्ञान अब काल्पनिक लग रहा था। वह भी मेरे साथ विचारमग्न हो गया था।

कुछ सोचते हुए पकज ने मुझसे कहा, “कल हम दोनों नाहरगढ़ किले में चलेंगे।”

इस सुभाव से मैं बहुत मुश्किल से सहमत हुआ।

अगले दिन हम दोनों नाहरगढ़ किले में पहुंच गये। पकज एडवेंचरस नेचर का था। वह किले के हर कोने का निरीक्षण कर रहा था, पर मैं अदर-ही-अदर बहुत डरा और सहमा हुआ था। हम दोनों पूरे दो घंटों तक किले के अदर-बाहर घूमते रहे, पर हममें से किसी को किसी आत्मा के दर्शन नहीं हुए, न ही किसी ने साड़ी के आचल की छ्जन को अनुभव किया। मैं पकज को उस दीवार पर भी ले गया जहां मुझे जयपुर शहर देखते हुए आचल की छ्जन का अनुभव हुआ था। हम काफी देर तक दीवार पर खड़े रहे, पर न तो इत्र की भीनी-भीनी खुशबू आयी और न ही किसी आचल ने हवा के झोंके के साथ हमें छ्जा। हम किले से नीचे उतर आये और बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे अपने-अपने घरों को वापस आ गये।

मेरे कुछ परिजन दिल्ली में जयपुर घूमने आये थे। उन्होंने आमेर के ऐतिहासिक महल को देखने की इच्छा व्यक्त की। मैं उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में हिचक रहा था। अदृश्य-अशरीरी आत्माओं का भय अभी तक मेरे मन में बना हुआ था। मैं महलो-किलो से दूर ही रहना चाहता था।

आमेर चलने में अपनी असमर्थता के लिए मैं कोई ठीक-सा बहाना नहीं ढूँढ सका। परिजनों की जिद के आगे मुझे झुकना पड़ा और हम सब दूसरे पहर आमेर के लिए रवाना हो गये।

यहां, उपन्यास के पाठकों को, आमेर का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

आमेर, जयपुर का ही प्राचीन नाम है। प्रारम्भ में कछवाहा राजपूत शासको की राजधानी आमेर नाम से थी। राजधानी पहाडियों की घाटियों के मध्य बसी हुई थी। १७२७ ई० में सवाई जयसिंह ने आमेर की घाटियों से शहर को उठाया और पहाडियों से घिरे ममतल मैदान में अपने नाम से नया नगर बसाया जो जयपुर कहलाया। नयी और पुरानी राजधानियों में सड़क मार्ग से करीब सात किलोमीटर की दूरी है।

पुरानी राजधानी आमेर में एक किला (जयगढ़), दो महल और दो प्राचीन मंदिर हैं। अन्य भी कई मंदिर हैं, जिनमें जैन मंदिर मुख्य हैं, पर इनका निर्माण बाद के समय में हुआ है और क्योंकि इनका सम्बन्ध इस उपन्यास के कथानक से भी नहीं है, अतः यहाँ इनकी चर्चा निरर्थक है।

महलों में एक महल पहाड़ पर अवस्थित है और दूसरा पहाडियों के बीच तलहटी में। प्रारम्भिक शासक तलहटी में बनाये गये पहाडियों से घिरे इसी महल में रहते थे।

यह महल बहुत पुराना है। काफी समय तक कछवाहा राजा इस महल में रहे। कछवाहा राजपूत अयोध्या के महाराजा रामचन्द्रजी के पुत्र कुश के वंशज थे। आमेर में इनका राज्य १६७ ई० में स्थापित हुआ था। उस समय इसका नाम आमेर न होकर ढूढाड था। यहाँ का प्रथम राजपूत शासक धोलाराय था। धोलाराय नरवर का राजकुमार था। नन्हें राजकुमार धोलाराय के पिता सौंढादेव की अकाल-मृत्यु हो गयी थी। सौंढादेव का भाई राजकुमार धोलाराय को राजगद्दी पर बैठाने के बजाय खुद राजा बन बैठा। खतरा भापकर धोलाराय की माँ जिशु धोलाराय को लेकर एक भिखारिन के वेश में एक रात नरवर के राजमहल में निकल भागी और सीणा राजाओं की राजधानी खोगाव में जा पहुँची। खोगाव जयपुर से करीब पाँच मील उत्तर-पूर्व में स्थित है।

खोगाव में नरवर की राजमाता राजकुमार धोलाराय को लिए एक पेड़ के नीचे भिखारिन के वेश में बैठी हुई थी। उसे जोरों से भूख लग आयी थी। बालक धोलाराय भी भूख से बिलख रहा था। तभी एक ब्राह्मण उस

पेड के पास से गुजरा और भिखारिन की दशा देखकर उसके हृदय में दया उपजी। उसने उसके लिए आहार का प्रवध किया। ब्राह्मण भिखारिन के चेहरे के तेज और उसके व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। वह उसे समझा-बुझाकर मीणा राजा के पास ले गया। मीणा राजा ने भिखारिन को अपने महल में दासी के रूप में रख लिया।

दासी को पाकशाला की मुखिया बना दिया गया। वह प्रतिदिन अपने हाथ से बड़े ही स्वादिष्ट व्यजन बनाकर राजा को खिलाया करती थी। मीणा राजा ऐसे स्वादिष्ट व्यजन खाकर बहुत प्रसन्न हुआ और एक दिन इनाम देने के प्रयोजन से उसने दासी को दरवार में बुलाया। सभा में बातों ही बातों में रहस्य खुल गया। यह जान लेने के बाद कि दासी के रूप में नरवर की राजमाता ही उसके महल में रह रही है, मीणा राजा ने राजमाता का यथोचित सत्कार किया और उसे अपनी वहिन बना लिया। अब राजमाता सुख-सन्तोष के साथ अपने दिन काटने लगी और पुत्र धोलाराय को आगे की घटनाओं के लिए तैयार करने लगी। किन्तु राजकुमार धोलाराय बड़ा कृतघ्न सिद्ध हुआ। जवान होने पर उसने गद्दारी की और एक दिन जब वृद्ध मीणा राजा सरोवर में नहा रहा था, धोलाराय ने उसका वध कर डाला और खोगाव को तहस-नहस कर दिया। खोगाव के पास ही आमेर में उसने अपना नया राज्य स्थापित कर लिया।

धोलाराय ने सर्वप्रथम आमेर में ही एक ऊँची पहाड़ी पर छोटी-सी गढ़ी—विजयगढ़ी का निर्माण किया, जो कालान्तर में विस्तृत होकर जयगढ़ बन गयी। धोलाराय के वंशज चार सौ वर्षों तक विजयगढ़ी में रहकर ही राज करते रहे। फिर उन्होंने पहाड़ी की तलहटी में नये सुविधाजनक महल का निर्माण किया और पहाड़ी से नीचे उतर आये। पर यहाँ सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें हमेशा सतर्क रहना पड़ता था। इसलिए यह महल उन्हें असुरक्षित महसूस हुआ। पुनः पहाड़ी पर एक भव्य महल का निर्माण शुरू हुआ और सवाई जयसिंह ने जब तक नयी राजधानी का निर्माण नहीं कर लिया, वे इसी महल में रहकर राज करते रहे।

हम जब आमेर पहुँचे, तब वहाँ काफी पर्यटक आ गये थे।

मैंने एक-एक करके लगभग सभी प्राचीन स्थल अपने परिजनो को दिखाये। जयगढ़ नहीं दिखा सका क्योंकि वहाँ किमी को भी जाने की इजाजत नहीं थी। विशिष्ट व्यक्तियों को भी नहीं। जयगढ़ अभी तक जयपुर राजघराने की सम्पत्ति है। वहाँ दिन-रात कड़ा पहरा रहता है। मिर्फे 'आपातकाल' के दौरान ही यहाँ चहल-पहल हुई थी। कांग्रेस सरकार ने यहाँ कथित खजाने की खोज के लिए लाखों रुपये व्यय किये थे। मेना, भूगर्भशास्त्री, इतिहासकार, पुरातत्त्ववेत्ता व अनेक इंजीनियरों की मदद से खजाना पाने के लिए यहाँ व्यापक खुदाई करायी गयी थी, पर खजाना नहीं मिला।

मंदिर में सिलादेवी के दर्शन करने के बाद हम सब जलेब चौक (महल का विस्तृत अहाता) में बैठकर मुस्ताने लगे। आमेर की पहाड़ी का आकर्षण लगातार मेरे परिजनो को खींच रहा था। वे पहाड़ी पर चढ़ने का आनन्द लेना चाहते थे। मैंने इस प्रस्ताव का भरपूर विरोध किया, पर मेरी चली नहीं। सब पहाड़ी पर जाने के लिए उठ खड़े हुए। अनिच्छा से मुझे भी सबके साथ पहाड़ी पर चढ़ना पड़ा।

हम गिरते-पड़ते, हँसते-गाते पहाड़ी की चोटी पर जा पहुँचे।

ऊपर काफी समतल स्थल था। वहाँ बनाया गया परकोटा (शहर की सुरक्षा के लिए बनायी गयी दीवार) हालांकि अनेक स्थानों पर टूटकर ढह गया था, तथापि वह प्राचीनकाल की दर्शनीय कारीगरी और मजबूती को उजागर कर रहा था। परकोटे के साथ थोड़ी-थोड़ी दूरी पर जो बुर्ज बने हुए थे, वे तत्कालीन सुरक्षा चौकियों का काम देते थे।

दोपहरी अपना दामन सध्या को थमाने जा रही थी। अब तक आखों को चौंधियाने वाले दिनकर की प्रखरता क्षीण हो चुकी थी। आकाश के एक कोने में अब यह फैला हुआ लाल गोला ऐसा लग रहा था, जैसे सपूर्ण शौर्य को प्रदर्शित कर चुकने के बाद बुरी तरह थक गया हो और एक कोने में पड़ा मुस्ता रहा हो। चुराये हुए शौर्य को लेकर दूसरे कोने में चन्द्रमा

हसने लगा था। ज्यो-ज्यो सूरज निस्तेज होता जा रहा था, चन्द्रमा का रूप खिलता जा रहा था। लगता था जैसे सूरज के शौर्य का अंतिम रसपान कर चन्द्रमा ने चादनी का दूध पिलाकर उसे मुला दिया हो।

ऊपर की प्राकृतिक छटा इतनी मनमोहक थी कि हमे समय का ध्यान ही नहीं रहा। हम सब ऊपर पहुँचकर एक-दूसरे से विछड़ गये थे। जिसे जो स्थल भाया वह उस तरफ बढ़ गया था। मुझे छतरीनुमा बुर्ज आकर्षित कर रहा था, मैं उसी ओर बढ़ गया। वहाँ पहुँचकर उसके अंदर बैठकर यह अनुभव करने की इच्छा हुई कि प्राचीनकाल में प्रहरियों को यहाँ बैठकर कैसा लगता होगा। मैं बुर्ज के अंदर जाकर बैठ गया। सामने का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। दूर-दूर तक पहाड़ियों का सिलसिला, तब नाहरगढ़ का किला और फिर उसके पीछे छिपा हुआ जयपुर शहर।

मैंने कुछ नोट करने की दृष्टि से जेब में से डायरी और पेन निकाली और लिखने लगा। अभी एक शब्द ही अंकित कर पाया था कि किसी ने पीछे से आकर मेरे हाथ को सख्ती के साथ पकड़ लिया। मैंने चौककर मुड़कर देखा, परन्तु वहाँ मुझे कोई दिखाई नहीं दिया। जिस सख्ती के साथ मेरा हाथ पकड़ा गया था, उसकी पीड़ा से एकाएक मैं चीख पड़ा और मारे डर के थर-थरकापने लगा।

“डरो मत। मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं करूँगी।”

यह किसी अदृश्य नारी का मधुर स्वर था।

मैंने पुनः मुड़कर देखा, वहाँ कोई न था। फिर वही उड़ता हुआ आचल मेरे मुख पर आ गिरा।

मैंने हिम्मत बटोरी और कापती आवाज में पूछा, “कौन हो तुम?”

अदृश्य हाथ की पकड़ धीरे-धीरे ढीली हो गयी। मेरी कलाई नारी-पकड़ से मुक्त हो गयी।

नारी-स्वर पुनः मुखरित हुआ, “मैं तुम्हारी दुश्मन नहीं, मित्र हूँ। बल्कि तुमने तो मुझ पर बहुत-से एहसान कर रखे हैं।”

“पर मुझे तो कुछ दिखायी नहीं दे रहा है? क्या तुम प्रेतात्मा हो?”

“ नही! मैं प्रेतात्मा नहीं हूँ । ”

“ फिर कौन हो ? ”

“ एक भटकी हुई अतृप्त आत्मा । ”

“ मुझसे क्या चाहती हो ? ”

“ थोड़ी-सी मदद । ”

“ मदद ? एक मासारिक व्यक्ति से ? आत्मा तो स्वयं में निद्वि-शक्ति होती है । ”

“ हा! यही तो विडम्बना है । ” थोड़ा रुक कर उसने फिर कहा, “ मैं तुम्हारे लिए गैर नहीं हूँ । तुम ही तो वह पुष्प हो जिसने सर्वप्रथम मेरी कला की कदर की थी । तुमने ही तो मुझे मेरी मजिल पर पहुँचाया था । पर हाय रे मेरा दुर्भाग्य ! ” आत्मा सुनकर लगी ।

मैं मौन था ।

“ तुम मौन क्यों हो ? क्या तुमने अभी तक मेरी आवाज नहीं पहचानी ? ”

अदृष्ट आत्मा की आवाज मुरली और मधुर थी जैसे किसी श्रेष्ठ गायिका की होती है । परन्तु मैंने पहले यह आवाज कही सुनी हो, ऐसा मुझे नहीं लगा हा, फिर मुझे एकाएक याद आया । उस दिन रामचन्द्रजी के मंदिर में युवक पर चढ़ी आत्मा की आवाज, ‘इत्र दे दे राजन् ‘इत्र दे दे’ मे इसी स्वर की खनक थी । स्मरण होते ही मैं सिहर गया और डर के मारे पुनः मेरी कपकपी छूटने लगी । मेरी आँखों के सामने उस दिन के भ्रूम रहे युवक का चित्र उभर आया । मैंने तुरन्त अपनी जेबों में से सब कुछ निकाल कर बाहर रखना शुरू कर दिया, ताकि आत्मा बिना मन्त्रों के ही अपनी मनचाही वस्तु लेकर चली जाए । मैंने सारा सामान पेन, डायरी, पर्म, कथा, रुमाल और आज ही मुझ मेरी प्रेयसी द्वारा भेजा गया प्रेमपत्र सब कुछ फर्श पर बिखेर कर रख दिया । पर आत्मा ने कोई वस्तु नहीं उठायी ।

उल्टा, अदृश्य आत्मा मेरे इस कृत्य पर खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

“ये सब वस्तुएँ तुम वापस अपनी जेब में रख लो। मुझे इनमें से कुछ भी नहीं चाहिए और तुम्हारे पास इत्र तो है नहीं।”

मैं हत-प्रभ बैठा रहा।

“तुम मुझसे डरो मत। मैं फिर कह रही हूँ, मैं तुम्हारा कोई भी अनिष्ट नहीं करूँगी। मुझे तो बस, तुम्हारी मदद चाहिए। मुझे पहिचानने की कोशिश करो। मेरी आवाज पहिचानो। मुझे पहिचान लोगे तो तुम खुश हो जाओगे।” फिर वह स्वयं ही कुछ गुनगुनाने लगी।

मैंने स्पष्ट कह दिया, “मैं तुम्हारी आवाज नहीं पहिचान पा रहा हूँ।”

“अच्छा।” कहते हुए आत्मा निराश हो गयी। फिर बोली, “मैं तुम्हारे सामने वही सितार बजाती हूँ जो तुम्हें बहुत ही प्रिय थी और जिसे तुम बड़ी तन्मयता के साथ बजाया करते थे।”

दूसरे ही क्षण मेरे सामने सितार बज उठा। बहुत पुराना सितार था वह। लगभग पौने दो सौ वर्ष पुराना। पर सितार की झकार आज भी ताज़ा-सी लग रही थी। सितार के तार जग खाये हुए नहीं थे। लगता था, जैसे कोई वर्षों से इसे बजाता चला आ रहा है।

मैं सितार को भी नहीं पहिचान सका।

सितार बजना बन्द हो गया।

“अब भी नहीं पहिचान पाये?”

“नहीं।”

“ओफ़! ” आत्मा और भी निराश हो गयी। “तुम तो सब कुछ भूल गये हो। तुम्हें तुम्हें कुछ भी याद नहीं रहा क्या?”

“मुझे तो कुछ भी याद नहीं आ रहा है।”

“अच्छा। तो फिर तुम्हारे सामने मैं उसी रूप में प्रकट होती हूँ, जिस रूप में तुमने मुझे पहली बार देखा था।” वह निहायत करुणामय स्वर में बोली, “अब तो पहिचान लेना मुझे।”

कुछ क्षणों की स्तब्धता के बाद बुर्ज के पूर्वी खम्भे की ओर मुझे कुछ हिलता-सा दिखाई दिया। एक दूधिया सगमर्मरी पाव ‘छम’ से फर्श पर

आ टिका । पाव धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा और जमीन के समानान्तर हो गया । पाव की गठी हुई पिंडलिया देखकर मुझे यह अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि यह पाव किमी नृत्यागना का है । पाव में विशेष प्रकार की बनी पायल चमक रही थी । दो बार पाव टिकाकर पायल भ्रुकृत कर मुझे कुछ स्मरण कराने की चेष्टा हुई । पर मेरे मानम-पटल पर अतीत का कोई चित्र उभर कर नहीं आया जिससे इस पायल का बोध हो सकता । पाव पुन फर्श पर आ टिका । फिर एक हाथ खम्भे की ओट से बाहर आया । पूरी बाह विभिन्न आभूषणों से सजी हुई थी । ऐसे आभूषण मैंने पहले कभी नहीं देखे थे । सोने के कगन में जड़े मानक आखों को चौंधिया रहे थे । गोरी मासल बाह के आखिरी सिरे पर, कंधे से दो इंच नीचे 'सूर्य' की आकृति लिये हुए एक विशेष प्रकार का आभूषण था । दूसरे हाथ की अंगुली उस आभूषण पर आ टिकी ।

“ नहीं । मैं अब भी नहीं पहचान सका हू । ”

मेरे ऐसा कहने पर सारा शरीर खम्भे की ओट में से निकल कर मेरे सामने आ गया । सामने खड़ी युवती का रूप देख कर मेरी आंखें चौंधिया गयी । माक्षात अप्सरा खड़ी थी । मैं इस अकल्पनीय रूप को देख कर ठगा-सा रह गया ।

मैं विस्फारित नेत्रों से उस रूपमी को देखे जा रहा था ।

धीमे-धीमे कदमों में रूपसी मेरे करीब आ गयी । उसने मेरे मुह को अपने दोनों हाथों में भरकर कहा, “अब तो जान गये न, मैं कौन हू ?”

मैंने फिर ' ना ' में उत्तर दिया ।

रूपमी के अधरो पर तैर रही मुस्कान एकाएक लुप्त हो गयी । उसके गुलाब की पखुडियों जैसे अधर थोड़ा-सा काप कर स्थिर हो गये । उसकी शखाकार आंखों की पुतलिया नम हो गयी । अपनी पतली-पतली अंगुलियों से मेरे होठ सहलाते हुए उसने पुन पूछा, “सचमुच नहीं पहचाना ? ”

“नहीं ।”

एक कराह के साथ रूपसी चींवारे पर बैठ गयी । उसके चेहरे की लावण्ययुक्त ललाई मन्द पड़ गयी । उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से दो आसू टपक पड़े । “मेरा दुर्भाग्य ! वह भी नहीं मिले और तुम भी मुझे भूल गये । ”

‘वह’ कौन ? यह प्रश्न मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा । फिर मैं कौन हूँ जो इस रूप-सुन्दरी को भूल बैठा हूँ । मैं स्वयं विचारों में खो गया ।

थोड़ी देर बाद रूपसी उठ खड़ी हुई । उसने मेरा हाथ पकड़ा और परकोटे के सहारे चलने लगी ।

पहाड़ी पर दूधिया चादनी की चादर बिछी हुई थी । अकाश में फैला हुआ लाल गोला पुनः शौर्य के प्रदर्शन के लिए अन्तर्धान हो चुका था । परकोटे की लम्बी छाया पहाड़ी से उतरती चली जा रही थी । मेरी छाया पेड़ों को लाधती हुई तिर रही थी । अचानक मैं चौंक कर रुक गया । सिर्फ मेरी एक ही छाया जमीन पर पड़ रही थी । मेरे साथ चल रही रूपसी की छाया वहां नहीं थी ।

मेरे रुक जाने से रूपसी भी रुक गयी । वह मुस्कराकर बोली, “भयभीत मत होओ । छाया सिर्फ सामांरिक प्राणियों की हुआ करती है ।” उसने पुनः मेरा हाथ पकड़ा और चलने लगी ।

एक टीले पर आकर वह रुक गयी । जहां हम रुके थे, वहां से सामने की पगडंडी की ओर से कुछ अधिक चौड़ा रास्ता बना हुआ था । रास्ता नाहरगढ़ किले की ओर जा रहा था । सामने नाहरगढ़ किले की प्राचीर दिखायी दे रही थी । जहां हम खड़े थे, वहां परकोटे में एक छोटा-सा रास्ता बना हुआ था । सम्भवतः यह नाहरगढ़ किले से आमेर महल को जाने-आने वाले सदेशवाहकों के लिये कोई मार्ग रहा हो ।

रूपसी ने सामने की ओर अंगुली दिखाते हुए कहा, “मैं इधर से ही भागी थी, तुम्हें अकेले ही उन निर्दयी और क्रूर राक्षसों के चंगुल में

निरीह छोड़कर । इसके लिए मैं कई रातों तक रोती रही थी ।”

मुझे रूपसी की बातें बिल्कुल समझ में नहीं आ रही थी ।

उसने पुनः मेरे मुँह को अपनी हथेलियों में भरकर कहा, “ मैं तुम्हारे उस एहसान को आज तक नहीं भूली हूँ । तुम मेरे लिए देवपुरुष हो जिसने न सिर्फ मेरी कला की कद्र की थी, बल्कि मुझे मेरी मजिल तक भी पहुँचाया था । परन्तु यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि वे मुझे नहीं मिल सके , ” रूपसी पुनः रुआसी हो गयी । उसने मेरे गालों से अपने हाथ हटाते हुए कहा, “अब तुम जाओ । बहुत देर हो चुकी है । तुम्हारे परिजन नीचे जलेब चौक में चिंतातुर होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । ”

मैं अपने साथ आये परिजनो को भूल ही गया था । स्मरण होते ही मुझे चिंता हुई । मैं लौटने को उद्यत हुआ ।

रूपसी ने मेरी कलाई पकड़कर पूछा, “क्या तुम मुझसे दुवारा मिलोगे ? ”

“क्यों नहीं । ”

“ डरोगे तो नहीं ? ”

“ अब डर किस बात का । ”

रूपसी खुश होते हुए बोली, “मैं तुम्हारा कल नाहरगढ़ किले की उसी प्राचीर पर इतजार करूँगी । ठीक उसी जगह, जहाँ मैंने तुम्हारा पहला स्पर्श किया था । ”

मैंने आने का वायदा कर दिया ।

“ और मुनो । ” मैं रुक गया ।

“अकेले ही आना । किसी को भी अपने साथ मत लाना और न इस बात का किसी से जिक्र ही करना । ”

‘अच्छा’ कहकर मैं पहाड़ी में नीचे उतर आया ।

मैंने एक बार मुड़कर देखा, रूपसी वापस वुर्ज की तरफ जा रही थी । उसकी लाल साड़ी का आचल हवा में लहरा रहा था । मैं यह

देखकर दग रह गया कि अघेरे मे भी रूपसी का चेहरा, वाहे, पाव सब साफ-साफ चमक रहे थे । वह सीधी चली जा रही थी, उसने एक बार भी पीछे मुड़ कर नहीं देखा ।

मैं जब नीचे पहुँचा, जलेब चौक मे बैठे मेरे परिजनो के मुह पर हवाईया छूट रही थी । मुझे देखते ही उनकी जान-मे-जान आई ।

“ आ गया • आ गया •• । ” कहते हुए वे सब खडे हो गये ।

“ कहा चले गये ये तुम ? ”

एक के बाद एक, मेरे परिजनो ने प्रश्नो की झडी-सी लगा दी । पर मैंने उन्हे आज के वृत्तान्त के वारे मे कुछ भी नहीं बताया । यह कहकर उन्हे आश्वस्त किया कि राह भटक कर कहीं दूर निकल गया था इसलिए लौटने मे समय लग गया ।

ईश्वर का धन्यवाद करते हुए सब परिजन जयपुर लौट आये ।

अगले दिन मैं नियत समय पर नाहरगड किले मे पहुँचा । शाम का वक्त था । पर्यटक जल्दी-जल्दी पहाडी से नीचे उतर रहे थे । ऊपर चढने वाला शायद मैं अकेला ही था ।

मैं किले की दिवार पर आकर खडा हो गया, जहा कुछ दिन पहले रूपसी के आचल की मुझे प्रथम छ्अन मिली थी । आज मैं यहा आकर भयभीत नहीं था । मैं बेफिक्र होकर रूपसी के आने का इन्तजार करने लगा । मुझे अधिक समय तक इन्तजार नहीं करना पडा । भीनी-भीनी खुशबू आई थी और माडी के आचल ने मेरी पीठ छुई थी । मैंने मुड-कर देखा, मेरे ठीक वगल मे रूपसी खडी थी । वह मन्द-मन्द मुस्करा रही थी, खुश नज़र आ रही थी । शायद मेरे समय पर पहुच जाने से वह प्रसन्न थी ।

“ मैंने देर तो नहीं कर दी ? ”

“ नहीं, ! ” रूपसी ने मेरा हाथ पकडा और कहा, “ चलो, किले के

अदर चलते हैं । ” उसने मुझे दीवार से नीचे उतार लिया ।

हम दोनों धीमे कदमों से किले की ओर बढ़ चले । रूपसी के हर कदम साथ उसके पैरों की पायल ‘ छम छम ’ आवाज कर रही थी । उसने आज गहरे हरे रंग की साड़ी पहन रखी थी । अपने लम्बे वालों को विशिष्ट पद्धति में गूँथकर उसने लम्बी चोंटी बना रखी थी । ऐसा केश-विन्यास मैंने इसके पूर्व कहीं नहीं देखा था । केशवर्तिका रूपसी के उभरे हुए नितम्बों पर झूल रही थी । उसकी बड़ी-बड़ी मीपनुमा पलकें काजल में अभिभूत थी । गुलाब की पखुडियों-सरीखे पतले-पतले अवर भी अधिक रसीले लग रहे थे । गोरी बाँहें आभूषणों से लदी हुई थी । बबल नग-मर्मरी गालों में स्निग्धता रिस रही थी । बल खाता हुआ कटि-प्रदेश मादकता उत्पन्न कर रहा था । वह ऐसे चल रही थी जैसे कोई पटरानी अपने महल में चल रही हो ।

हम किले के अन्दर पहुँचे । वह मुझे एक खास कमरे में लाकर रुक गयी ।

किले का यह कमरा आकार में सामान्य होते हुए भी अपनी कुछ विशिष्टता लिये हुए था । कमरे के ठीक मध्य में एक कुण्ड बना हुआ था । मैंने सुन रखा था कि बीते वक्त में रानिया इस कमरे में स्नान किया करती थी । कुण्ड में गर्म और ठंडा दोनों तरह के पानी आने की व्यवस्था थी । रानिया नहाकर शृंगार भी इसी कमरे में किया करती थी । इसके लिए तब पूरी व्यवस्था रही होगी । दीवार में बना हुआ खान्चा आज भी यह बताता है कि किसी समय यहाँ एक आदमकद शीशा लगा हुआ था ।

कुछ क्षणों तक रूपसी कमरे को अपलक नजरों में निहारती रही, फिर धीरे-धीरे चलकर कुण्ड में जाकर बैठ गयी । देखते ही देखते कमरे का रूप बदल गया । कुण्ड में कल-कल करता हुआ पानी आ गया । अपने आप ही खान्चे में शीशा जड़ गया और अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषण और शृंगार के सामान कमरे में सज गये । वह बिल्कुल एक पटरानी

के महल का कमरा हो गया था । मेरे अचरज का कोई ठिकाना न था ।

रूपसी बड़े इत्मीनान से कुण्ड में नहाने लगी । उसने अपने बालों को खोलकर मुक्त कर दिया था । जल टूट-टूट कर मोती की शक्ल में बालों से नीचे रिस रहा था ।

मैं ठगा-सा चुपचाप यह सब देखता रहा ।

स्नान कर चुकने के बाद उसने चदन की पेट्टी खोलकर इत्र, कधी, तेल आदि निकाले और आदमकद शीशे के सामने बैठकर श्रृंगार करने लगी ।

उसने नये वस्त्र पहने, पलको पर नया काजल लगाया, नये आभूषण पहने, माथे पर बड़ी-सी बिंदिया लगायी और फिर आदमकद शीशे में अपने रूप को निहारा । अपने ही अनुपम सौन्दर्य को देखकर वह मुस्करा पड़ी । उसने मुझे कोने में तिपाई पर पड़ी चादी की डिबिया उठाकर देने को कहा । मैंने डिबिया उठाकर रूपसी को दे दी । डिबिया खोलकर उसने चुटकी-भर सिंदूर निकाला और अपने माथे के पास ले गयी ।

“नहीं । ” एकाएक चीखकर रूपसी ने सिंदूर दूर फेंक दिया । सिंदूर सारे कमरे में बिखर गया । कमरे की समस्त दीवारें, छत, फर्श, कुण्ड का पानी, आदमकद शीशा, कमरे में रखी हर वस्तु सुर्ख लाल हो गयी । स्वयं रूपसी भी नख-शिख लाल अंगारे की तरह दीखने लगी । लाल रंग की तीव्रता बढ़ती चली गयी । मैं यह तीव्रता बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था । मेरे लिए कमरे में और अधिक समय तक खड़ा रहना असंभव-सा हो गया । मैं दौड़कर किले के बाहर आ गया । किले के पिछवाड़े वाले द्वार के पास आकर मैं रुक गया । मैं बहुत बुरी तरह से हाफ रहा था ।

कुछ देर बाद धीमे-धीमे कदमों से रूपसी भी बाहर आ गयी । जो विकरालता कमरे में उसके चहरे पर आ गयी थी वह अब नहीं रही थी । उसका चेहरा समान्य हो चुका था और वह पूर्ववत् हरी साड़ी में लहलहा रही थी । मुझे यह सब एक स्वप्न जैसा लग रहा था ।

रूपसी चुपचाप मेरे करीब आकर खड़ी हो गयी। उसने अपनी साड़ी से मेरे घवराये हुए चेहरे के पसीने को पोछा और फिर हाथ पकड़ कर मुझे सामने की ओर ले गयी।

एक बड़ी चट्टान के पास आकर वह रुक गयी। रूपसी ने मुझे चट्टान पर बैठ जाने का इशारा किया और वह स्वयं भी उस पर बैठ गयी।

“देख लिया न तुमने, सिंदूर मुझे कभी रास नहीं आया। जब-जब मैंने अपनी मांग सिंदूर से सजानी चाही, वह छिटक गया। आज भी मैं सिंदूर मांग में नहीं भर पाई। बोलो, मैं कब तक तरसती रहूंगी? कब तक इस तरह भटकती रहूंगी मैं?”

“तुम किस के लिए भटक रही हो?”

“ओह! अभी भी तुम्हें कुछ याद नहीं पड़ रहा है। तुम्हें यह कमरा क्या याद नहीं पड़ता? तुम ही ने तो उस दिन यहाँ बैठकर घंटों सितार बजाया था। तुम्हारे सामने ही तो मैंने नहाकर इसी कमरे में अपने वस्त्र बदले थे। तुम्हीं ने तो उस रात मुझे इस किले की कैद में से निकाला था।”

“मैंने निकाला था।”

“हा, तुमने ही तो मुझे मौत के मुह में से निकाला था। बहुत बड़ा जोखिम उठाकर। तुमने अपनी जान की परवाह न करके किले की कैद में से मुझे मुक्त कराया था। इस जघन्य अपराध के लिए तुम्हें मौत की सजा भी हो सकती थी।” थोड़ा रुककर वह पुनः बोली, “मैं रात के अधियारे में ही पैदल-पैदल रामगढ़ चली गयी थी। क्या तुम्हें कुछ याद पड़ता है?”

“मुझे तो कुछ भी याद नहीं पड़ रहा है। मुझे तो यह याद नहीं कि मैंने कभी इस कमरे में सितार बजाया था और तुमने मेरे सामने वस्त्र बदले थे। मुझे यह भी याद नहीं कि तुम यहाँ कैद थी। मैंने तो पहली बार कल तुम्हें आमेर में देखा था।”

“क्या कहा, कुछ भी याद नहीं पड़ता ? अरे, उस रात यही हम दोनों ने मिलकर खूब गाया भी था और तब तक गाते रहे थे, जब तक सारे प्रहरी सो नहीं गये थे । ”

“ नहीं ! मुझे ऐसा कुछ भी याद नहीं आ रहा है । ”

मेरी बात से रूपसी उदास हो गयी । फिर वह बुदबुदायी, “ तुम्हे भी कुछ याद नहीं, वे भी मुझे भूल गये आखिर मैं कब तक भटकती रहूंगी ? ”

कुछ क्षणों तक हम दोनों मौन रहे ।

फिर रूपसी अपने चेहरे पर दृढ़ता लाते हुए बोली, “ बड़ी मुश्किल से तो तुम मुझे मिले हो । अब मैं तुम्हे सहज में नहीं खो दूंगी । आज मैं तुम्हे सब कुछ याद दिलाकर छोड़ूंगी । सुनो, मैं तुम्हे आरम्भ से अन्त तक वे सारी बातें बताती हूँ, निश्चित ही तब तुम मुझे पहचान जाओगे ।

रूपसी ने कहना शुरू किया—

“ आमेर के राजा भगवानदास ने अपनी बेटी का विवाह मुगल बादशाह से कर रखा था । भगवान दास का दत्तक पुत्र मानसिंह वीर एवं कुशल सेनापति था । उसके पराक्रम की तूती दूर-दूर तक बोलती थी । इस नाते मानसिंह ने बादशाह अकबर के दरबार में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था और शहशाह अकबर ने मुगल सेना के बहुत बड़े हिस्से की वागडोर मानसिंह को सभला दी थी । जहाँ कहीं विद्रोह होता, मानसिंह को वहाँ भेज दिया जाता । वह हमेशा विजय का नगाडा बजाता हुआ लौटता । मानसिंह ने मुगल सल्तनत के लिए बंगाल, आसाम, बिहार, दक्षिण और काबुल में अनेक युद्ध लड़े । अनेक शासकों को पराजित कर मानसिंह ने चारों दिशाओं में दूर-दूर तक मुगल साम्राज्य को फैलाया । इन लड़ाइयों में अपार सम्पत्ति मानसिंह के हाथ लगी । काबुल से तो वह अतुल सपदा ऊटों के काफिले पर लाद कर जयपुर लाया था । इस तरह धीरे-धीरे जयपुर के राजमहल में बेहिसाब सम्पत्ति का जखीरा जमा हो गया ।

“जब गहशाह अकबर वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तो दिल्ली में उत्तराधिकारी के लिए मघर्ष छिड़ गया। उस समय मानसिंह ने चाहा कि उसकी वहिन का लडका खुसरो गद्दी पर बैठे। इसके लिए उसने जब-दस्त प्रयत्न भी किये। मानसिंह का मुगल सेना और सरदारों पर बहुत ज्यादा दबदबा था। इसके अलावा उसके पास बीस हजार राजपूतों की शक्तिशाली सेना भी थी। मानसिंह अपने उद्देश्य में लगभग सफल हो गया था कि तभी गहशाह अकबर ने दस करोड़ रुपये की (आज की तारीख में अरबों रुपये की) विशाल राशि देकर उसे उत्तराधिकार के सघर्ष में विलग कर दिया। गहशाह अकबर नहीं चाहते थे कि उनकी राजपूतनी रानी की कोख से जन्मा राजकुमार दिल्ली के तख्त पर बैठे।

“यह विपुल राशि भी जयपुर के खजाने में आकर जमा हो गयी।”

“मानसिंह के बाद भावसिंह और फिर महासिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठे। ये दोनों राजा मानसिंह की तरह पराक्रमी न होकर उल्टा विलासी, मदिरा-प्रेमी और अयोग्य राजा सिद्ध हुए। इन्होंने जयपुर के खजाने में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं की।

“महासिंह के बाद मिर्जा राजा जयसिंह आमेर की गद्दी पर बैठे। यह योग्य शासक थे। इन्हें मुगल दरबार में छह हजारी मनसब का पद प्राप्त था।

“मिर्जा राजा जयसिंह ने अपने पराक्रम की धाक जमायी, अनेक युद्धों में विजयी रहकर उन्होंने जयपुर के खजाने में पुनः वृद्धि शुरू की। मिर्जा राजा जयसिंह का शौर्य मुगल गहशाह औरंगजेब को नासूर की तरह तकलीफ देने लगा। औरंगजेब ने इस काटे को हमेशा के लिए समाप्त कर देने की सोचकर एक धिनीनी चाल चली। मिर्जा राजा जयसिंह के दो पुत्र थे—रामसिंह और कीरत सिंह। औरंगजेब ने कीरत सिंह को जयपुर का राजा बनाने का भ्रामा देकर गुमराह कर दिया। और इसी बेटे ने अफीम के साथ जहर देकर पिता की हत्या कर दी। परन्तु अपने पिता की हत्या करने वाले कीरतसिंह को औरंगजेब ने जयपुर के सिंहासन पर नहीं

वैठाया और उसे केवल कामा की जागीर देकर ही सतुष्ट कर दिया ।

“मिर्जा राजा जयसिंह के बाद रामसिंह और उसके बाद विशनसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा । इन दोनों राजाओं ने अपने पूर्वजों द्वारा इकट्ठी की गयी सम्पत्ति के जम्बीरे को किसी तरह शत्रुओं की नजरों से बचाये रखा ।

“विशनसिंह के बाद सवाई जयसिंह गद्दी पर बैठा ।

“सवाई जयसिंह विद्वान एव योग्य शासक होने के साथ-साथ पराक्रमी भी था । उसने दक्षिण में कई युद्ध जीते और वेशुमार सम्पत्ति अर्जित की ।

“सवाई जयसिंह के गद्दीनशीन होने के छ वर्ष बाद मुगल शहशाह औरंगजेब की मृत्यु हो गयी । दिल्ली में गद्दी के लिए पुनः संघर्ष छिड़ गया । शहजादा बेदार बख्त और शाह आलम ने दिल्ली की सल्तनत पर अपना-अपना हक जताया । दोनों ने युद्ध के विगुल बजा दिये । सवाई जयसिंह ने बेदार बख्त का साथ दिया । धौलपुर के पास मुगल साम्राज्य के दोनों दावेदारों में जमकर युद्ध हुआ । युद्ध में बेदार बख्त मारा गया । और आलम शाह विजयी हुआ ।

“चूँकि जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने गद्दी के संघर्ष में बेदार बख्त का साथ दिया था, इसलिए शहशाह आलम शाह उससे सख्त नाराज हो गया । उसने जयपुर पर आक्रमण के लिए मुगल सेना भेज दी । राज-पूतों ने मुगल सेना का डटकर सामना किया और उसे पराजित करके दिल्ली की तरफ खदेड़ दिया । मुगल सेना की पराजय से सवाई जयसिंह की धाक जम गयी और वह निडर होकर जयपुर का शासन करने लगा ।

“सवाई जयसिंह को आमेर की पहाड़ियों के बीहड़ में बसे शहर से सतोप नहीं हुआ । उसने पहाड़ियों की दूसरी तरफ के समतल मैदान के जंगल को कटवा कर वहाँ एक नया शहर बनवाया । विद्याधर-जैसे कुशल शिल्पी की मदद से उस समय के बत्तीस करोड़ रुपये से नये शहर जयपुर का निर्माण पूरा हुआ ।

“परन्तु जयपुर शहर बसाने में जितना धन खजाने में से निकाला

गया, उससे कही अधिक खजाना सवाई जयसिंह के शासन के दौरान उम खजाने में जमा किया गया। इस तरह जयपुर के खजाने में निरंतर वृद्धि होती रही।

“सवाई जयसिंह ज्योतिष विद्या का भी प्रकाण्ड पंडित था। उसे चंद्र, सूर्य और दूसरे ग्रहों-नक्षत्रों का अच्छा ज्ञान था। उसने ज्योतिष के अनेक यंत्रों का आविष्कार किया। सवाई जयसिंह द्वारा दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में बनवाए गये ‘मानमदिरो में उनके समस्त ज्योतिष-यंत्र अब भी वहां सुरक्षित रखे हैं।

“सवाई जयसिंह द्वारा ज्योतिष-यंत्रों का निर्माण सात वर्षों तक चलता रहा। बाद में जब उसे सूचना मिली कि समरकंद में ज्योतिष-मन्त्री कुछ विशिष्ट यंत्रों का निर्माण किया गया है तो सवाई जयसिंह ने समरकंद के राज-ज्योतिषी उलगवेग द्वारा बनाये गये वे यंत्र जयपुर भगवाये परन्तु इन यंत्रों का प्रयोग किए जाने पर इन्हें मतोपप्रद नहीं पाया। तभी जयसिंह को पता चला कि पुर्तगाल में भी ज्योतिष विद्या पर अच्छा काम हुआ है। उसने पुर्तगाल के ज्योतिषी मिगनरी पादरी मैन्थुल को जयपुर आने के लिए आमंत्रित किया। चूंकि पादरी अपने बनाये हुए ज्योतिषी-यंत्र अपने साथ नहीं लाया था इसलिए अपने यहां के कुछ ज्योतिष-विद्वानों को पादरी द्वारा निर्मित यंत्रों का अध्ययन करने के लिए सवाई जयसिंह ने उन्हें पुर्तगाल भेजा। सवाई जयसिंह के ज्योतिष-प्रेम से पुर्तगाल का महाराजा बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपने राजकोष से व्यय करके जेवियर डी मिलवा नामक व्यक्ति के साथ पुर्तगाल के महान ज्योतिषी डिला हायर के बनाये हुए ज्योतिष-यंत्र जयपुर भिजवाये। कालान्तर में इन यंत्रों से सवाई जयसिंह को भविष्यफल ज्ञात करने में काफी सहायता मिली।

“एक दिन जयपुर के ज्योतिष-यंत्रालय में सवाई जयसिंह ज्योतिष-विद्या द्वारा अपनी भावी पीढ़ियों का भविष्य देख-परख रहा था। जो ‘भविष्य फल’ उसे ज्ञात हुआ उससे वह निहायत चिंतित हो उठा। अगले ही

दिन सवाई जयसिंह ने अपने विश्वस्त सामंतों की एक गुप्त सभा बुलाई और उन्हें बताया 'मेरा ज्योतिष-ज्ञान कह रहा है कि हमारी आने वाली पीढ़ी अत्यन्त कष्ट में रहेगी। आने वाले शासक अधिक योग्य सिद्ध नहीं होंगे। उनमें आवश्यक विवेक का अभाव रहेगा और असीम विपदाओं से वे घिरे रहेंगे। राजकोष के लूटे जाने की भी संभावना है। अतः मैं अपनी भावी पीढ़ियों के लिए पर्याप्त धन सुरक्षित रख देना चाहता हूँ।'

“सामन्तों में गंभीर मंत्रणा हुई और खजाने को छुपाकर गुप्त स्थान में गाड़ने की एक अत्यन्त गोपनीय योजना बनाई गई।

“खजाना गाड़ने का कार्य अमावस्या की आधी रात को शुरू किया गया। मजदूरों की आंखों पर पट्टियाँ बांध कर उन्हें हर रोज घुमावदार मार्गों से खजाना गाड़ने वाले स्थान पर ले जाया जाने लगा और दो महीनों के अथक परिश्रम के बाद बड़े ही तिलिस्मी ढंग से 'खजाना' जमी-दोज किये जाने का कार्य सम्पन्न हुआ।

“कहा जाता है, खजाना गाड़ने के समय एक बार एक सामंत की नीयत में फर्क आ गया और वह चोरी-चोरी खजाने के रास्ते का वीजक (नक्शा) बनाने लगा। गुप्तचरों से इस बात का पता चलते ही जयसिंह ने खजाना गाड़ने वाले स्थान पर पहुँचकर उस सामंत का वध कर दिया।

“कहते हैं, उस सामंत की तड़पती हुई आत्मा ने जयसिंह को शाप दिया और खजाने का असली वीजक जो स्वयं सवाई जयसिंह ने बनाया था एकाएक रहस्यमय ढंग से खो गया। उस समय सवाई जयसिंह बीमार था। वीजक बहुत ढुंढवाया गया, पर नहीं मिला। जयसिंह ने पलंग से उठने के बाद अपनी याददाश्त के आधार पर पुनः नया वीजक बनाने की सोची परन्तु वह पलंग से उठ ही नहीं सका और लम्बी बीमारी के बाद, बिना नया वीजक बनाये ही उसने दम तोड़ दिया।

“जैसा कि ज्योतिष में फलित हुआ था, सवाई जयसिंह के बाद जयपुर राज्य के सिंहासन पर बैठने वाला उसका लड़का ईश्वरीसिंह योग्य

शासक सिद्ध नहीं हुआ। वह पराक्रमी भी नहीं था। मन १७४७ ई० में अल्दाली से युद्ध करने के लिए वह सतलुज नदी के किनारे पहुँचा जहाँ था परन्तु करारी हार खाकर वापस जयपुर लौट आया। इस युद्ध की पराजय से उसकी प्रतिष्ठा को काफी धक्का पहुँचा। युद्ध में घन-जन की भी व्यापक हानि हुई। ईश्वरी सिंह इस झटके को वर्दाश्त नहीं कर सका। वह दिन-प्रतिदिन कमजोर होता गया। इसी बीच उसके सौतेले भाई माधोसिंह ने जयपुर की गद्दी पर अपना हक जताया और विद्रोह कर दिया।

“माधोसिंह स्वर्गीय जयसिंह की उम रानी की सतान था, जिसकी मेवाड़ के राणा ने जयसिंह के साथ इस ग़र्त पर शादी की थी कि राणा वंश की राजकुमारी से विवाह के बाद यदि उसकी कोख से लड़का हुआ तो वह ही जयपुर का राजा बनेगा और यदि लड़की पैदा हुई तो वह किसी भी मूरत में मुगलों को नहीं ब्याही जायेगी।

“और माधोसिंह ने इसी ग़र्त के आधार पर अपने को जयपुर का राजा घोषित कर दिया। उसने ईश्वरीसिंह को युद्ध के लिए ललकारा। मेवाड़ के राणा तथा कोटा और बूंदी रियामतो के शासकों ने माधोसिंह के साथ मिल कर राजमहल नामक स्थान पर ईश्वरीसिंह से युद्ध किया। इस युद्ध में ईश्वरीसिंह विजयी अवश्य हुआ, परन्तु अपार वन-जन की हानि हुई होने के कारण जयपुर का राजकोष काफी हद तक खाली हो गया। ईश्वरीसिंह इस मयमे ब्रह्मचर जीत के उन्माद में अय्याश बन गया। यहाँ तक कि वह अपने ही मंत्री की बेटे पर आक्रमण हो गया। उम तरुणी को नित्य छत पर खड़ी हुई देखने भर के लिए उसने ईश्वरीलाट का निर्माण करवा डाला। यह ईश्वरीलाट जयपुर के मुख्य बाजार त्रिपोलिया में छोटी कुतुबमीनार की तरह आज भी वहाँ खड़ी है।

“उधर माधोसिंह युद्ध में हारकर भी निराश नहीं हुआ था और न ही हार में उसके हाँसले परत हुए थे। उसने अपनी शक्ति और सेना को पुनः संगठित किया। होलकर से उसने मदद करके उसकी सहायता भी

प्राप्त कर ली और दुबारा सेना लेकर जयपुर पर आक्रमण कर दिया । विलासित में डूबा हुआ ईश्वरीसिंह हार गया । माधोसिंह जयपुर का नया शासक बना ।

“माधोसिंह द्वारा जयपुर के शासन की बागडोर सभालने तक जयपुर राज्य का राजकोष खाली हो चुका था । माधोसिंह के सामने भयकर आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया । उसने अपने पिता सवाई जयसिंह द्वारा ज़मींदोज़ खजाने की खोज करने की सोची ।

“उन सामंतों को बुलाया गया जिनकी देख-रेख में खजाना ज़मींदोज़ किया गया था । सामंतों ने माधोसिंह को बताया कि वे खजाने के बारे में कुछ भी नहीं बता सकते, क्योंकि खजाने को ज़मींदोज़ किये जाने का बीजक (वर्णनात्मक नक्शा) स्वयं स्वर्गीय महाराजा जयसिंह ने तैयार किया था और उन्होंने बीजक किसी को भी नहीं दिखाया था । सामंतों को भी मजदूरों की ही तरह आखों पर पट्टी बांधकर खजाना दफनाये जाने वाले स्थान पर ले जाया जाता था । सामंतों को अलग-अलग दिशा से ले जाकर हर एक से एक हिस्से की ही सुरंग खुदवायी गयी थी जिससे सुरंगों का सिलसिला गड़बड़ हो जाने से किसी की भी संभावना में नहीं आया था ।

“माधोसिंह को सामंतों से खजाने के बारे में कुछ भी अता-पता नहीं चल सका । तब माधोसिंह ने खोये हुए बीजक की तलाश शुरू करवायी । चन्द्रमहल और जयगढ़ का चप्पा-चप्पा छान मारा गया, पर बीजक का कहीं पता नहीं मिला । कुछ नकली बीजक अवश्य मिले जो स्वर्गीय महाराजा जयसिंह ने मात्र दुश्मनों को गुमराह करने के लिए बनवा रखे थे ।

“महाराजा माधोसिंह अपने सत्रह वर्ष के शासन के दौरान दबे हुए खजाने की तलाश पूरी सरगर्मी से कराता रहा । खजाना ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ही वह परलोक सिंघार गया ।

“माधोसिंह के बाद उसका बेटा पृथ्वी सिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा परन्तु वह अधिक दिनों तक राज नहीं कर सका । एक दिन एकाएक घड़े

से गिरकर वह मर गया। तब उसका छोटा भाई प्रताप सिंह गद्दी पर बैठा।

“जयपुर रियासत की माली हालत दिन-प्रतिदिन बढ़ से बढ़तर होती जा रही थी। राजकोष में कमी आ जाने की वजह से प्रताप सिंह को मेना के खर्च में भारी कटौती करनी पड़ गई। जयपुर की शक्ति को क्षीण हुआ देखकर कुछ महत्वाकांक्षी सरदारों ने मिर उठाने शुरू कर दिये।

“फिर तो प्रताप सिंह की शक्ति विद्रोही सरदारों को दवाने में ही लग गयी। उसी समय जयपुर के प्रधानमंत्री खुशहालीराम ने एक जवर्दस्त चाल खेली। खुशहालीराम धूर्त और कपटी स्वभाव का व्यक्ति था। वह प्रताप सिंह को मरवाकर खुद जयपुर का राजा बनना चाहता था। उसने गुप्त रूप से मुगलों के साथ साठ-गाठ कर ली। बड़ी धूर्तता के साथ खुशहालीराम ने जयपुर में माचेड़ी रियासत निकलवाकर मुगलों को सौंप दी। माचेड़ी रियासत जयपुर के राजस्व-प्राप्ति का सबसे बड़ा स्रोत थी।

“माचेड़ी मिल जाने में मुगल बादशाह बहुत खुश हुआ। उसने प्रताप सिंह का तटता पलटने के लिये हमदानी खाँ के नेतृत्व में शाही मेना जयपुर भेजी।

“खुशहालीराम ने प्रहरियों को घन देकर पहले से ही अपने पक्ष में कर रखा था। मुगल मेना के जयपुर पहुँचते ही रात में प्रहरियों ने शहर के मुख्य द्वार खोल दिये। मुगल सेना जयपुर शहर में घुस आई। सैनिकों ने कत्ले-आम शुरू कर दिया। रात में गहरी नींद में सो रहे निहत्थे लोगों को वे मारने-काटने लगे। मुगल मेना ने जवर्दस्त लूट मचा दी।

“महाराजा प्रताप सिंह को रात में जगाया गया और मुगल मेना के आक्रमण की उसे सूचना दी गयी। प्रताप सिंह खुद अपनी वफादार मेना को लेकर मुगल मेना का सामना करने महल के बाहर आ गया। अपने पराक्रम में उसने मुगल मेना को मार भगाया।

“मुगल मेना जयपुर छोड़कर चली तो गयी, पर वह जाते-जाते

काफी नुकसान कर गयी। इसमें राजकोष पर और भी अधिक दबाव पड़ गया।

“प्रताप सिंह ने सरदारों की आपात-मभा बुलायी। सरदारों ने महाराजा के कहने पर पुनः एक बार पूर्वजों द्वारा जमींदोज़ खजाने की खोज शुरू की। दो वर्षों तक लगातार खजाना ढूँढा जाता रहा पर कोई सुराग नहीं मिला। महाराजा प्रताप सिंह भी खजाना देखने की तमन्ना लिये ही स्वर्ग सिंघार गया।

“प्रतापसिंह के बाद १८०३ में उसका बेटा जगतसिंह” कहते-कहते रूपसी रुक गयी। रूपसी के चेहरे पर एकाएक बेवसी, विपाद, क्षोभ के भाव उभर आए थे। उसकी आँखें तरल हो गयी थीं। वह अपने आंतरिक दर्द को दबाते हुए बड़ी कठिनाई से बोल पायी, “उसका बेटा जगतसिंह जयपुर की राजगद्दी पर बैठा।”

अब रूपसी चुप हो गयी थी।

रूपसी कौन है? यह तो अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया था, पर यह स्पष्ट हो गया था कि रूपसी जयपुर के इतिहास की ही एक कड़ी है। उसका जयपुर राजघराने से अवश्य कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, तभी तो वह चन्द्रमहल, नाहरगढ़ और जयगढ़ किले में लगे एक-एक पत्थर का इतिहास जानती है। उसने अवश्य ही चन्द्रमहल, जयगढ़ और नाहरगढ़ किले में निवास किया है। फिर उसकी मांग में सिंदूर क्यों नहीं भरा जा सका?

रूपसी ने राजसुख भोगा तो होगा, पर सम्भवतः वह सुख पूर्णता को प्राप्त होने के पूर्व ही खण्डित हो गया होगा।

महाराजा जगतसिंह का उल्लेख आते ही वह विचलित क्यों हो गयी है? उसकी आँखों से दो बूँद आँसू भी तो टपके हैं। क्या ये आँसू उस खण्डित मुख की वेदना को व्यक्त कर रहे हैं।

एकाएक रूपसी ने कहा, “चलो!”

“कहा।”

“ तुम्हारे घर ! ”

“ मेरे घर ? वहा तुम कैसे चलोगी ? क्या तुम सासारिक दुनिया में चलोगी ? ”

“नहीं, उस घर में नहीं, तुम्हारे असली घर में । उठो ।”

मैं हतप्रभ-सा उठकर खड़ा हो गया और हम नाहरगढ़ के पिछवाड़े की ओर चल पड़े ।

आमेर महल का प्राचीन परकोटा आ गया था । परकोटा पार कर हम जयगढ़ की ओर जा रहे थे ।

रास्ता ऊबड़-खाबड़ था । चुपचाप मौन चलना मुझे अखर रहा था । मैंने रूपसी के बारे में अधिक स्पष्ट रूप से जानने के प्रयोजन से कहा, “महाराजा जगतसिंह की तो सोलह रानिया थी न ?”

“हां ।” रूपसी ने सक्षिप्त-सा उत्तर दिया । उसने यह नहीं बताया कि वह भी उन सोलह रानियों में से एक थी या नहीं ।

महाराजा जगतसिंह का उल्लेख आते ही वह पुनरु बोली, “वे बहुत भावुक प्रकृति के आदमी थे । अल्पायु में ही उन पर शासन की जिम्मेदारी आ पड़ी थी । वे जब जयपुर के महाराजा बने थे, उस समय मात्र सत्रह वर्ष के थे । महाराजा के अल्पायु होने और उनकी भावुक प्रकृति होने का सरदारों, मन्त्रियों ने बड़ा ही नाजायज फायदा उठाया । सरदारों ने महाराजा जगतसिंह को कभी चैन से राज करने नहीं दिया । वह हमेशा हुडदग मचाये रहते थे । नित-नया वस्त्र खड़ा कर देते थे । अनेक बार वे महाराजा को गुमराह करने में सफल हो गये । इसी गुमराही का मैं भी शिकार बनी,” कहकर रूपसी पुनरु चुप हो गयी । फिर वह स्वयं ही महाराजा की प्रशंसा में बोली, “ उन्हें अनेक युद्ध लड़ने पड़े थे । गिंगोली में हुए युद्ध में तो उन्होंने जोधपुर के महाराजा मानसिंह को कड़ी शिकस्त दी थी । यह लड़ाई जयपुर की अत्यन्त सुन्दर राजकुमारी कृष्णाकुमारी को पाने के लिए हुई थी ।”

“क्या उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी तुमसे भी ज्यादा

सुन्दर थी ? ” मैंने पूछा ।

उसके अधरो पर एक विजित मुस्कान तैर गयी, “नहीं । महाराजा जगतसिंह ने एक बार कहा था, मैं कृष्णाकुमारी से सहस्रहगुणा सुन्दर हूँ । ” वह प्रफुल्लित होते हुए बोली, “सच ! उन्होंने कहा था, तुम विश्व सुन्दरी हो । ”

मैं सोच रहा था, अगर महाराजा जगतसिंह ने इस सुन्दरी को ‘विश्व-सुन्दरी’ का खिताब दिया था, तो कोई अतिशयोक्तिपूर्ण बात नहीं कही थी । उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकुमारी भी अवश्य सुन्दर रही होगी, जिसके कारण जयपुर-जोधपुर में भयकर युद्ध छिड़ा, परन्तु यह भी तय है कि इस रूपसी के सौन्दर्य ने भी उस काल में काफी धूम मचायी होगी ।

जयगढ़ आ गया था । रूपसी रुक गयी । उसने बायीं ओर से नीचे उतरने का इशारा किया । अधरे में मुझे कोई रास्ता या पगडंडी दिखायी नहीं दे रही थी । मैं रूपसी के निर्देशानुसार चल रहा था । रूपसी ने मेरा हाथ पकड़ रखा था ।

हम एक टूटी हुई दीवार के पास आकर रुक गये । दीवार किसी खडहर हो रहे मकान की थी । सैकड़ों वारिशों के थपेड़ों से ढह रहे इस मकान के सम्भवतः एक-दो कमरे अभी भी ढहने शेष थे ।

रूपसी मुझे लिये हुए दीवार के सहारे चलने लगी । पैरों के नीचे ढही हुई दीवारों का मलवा बिखर कर आवाज कर रहा था । मैं एक बार फिर चौक पड़ा । रूपसी के पैरों के नीचे मलबे के बिखरने की आवाज नहीं हो रही थी, जैसे पत्थरों पर कोई रुई का पुतला चल रहा था ।

मैं बहुत थक गया था । थोड़ा सुस्ताने के प्रयोजन से मैंने अपनी पीठ दीवार के साथ टिका दी ।

“नहीं । ” चीखते हुए रूपसी ने एक भटके से मुझे खींच लिया । धडधडाता हुआ ऊपर से मलवा नीचे आ गिरा । मैंने जिस दीवार से

अपनी पीठ टिकायी थी वह इतनी कमजोर हो चुकी थी कि मात्र इतने ही दबाव से ढह गयी। रूपमी ने मेरी जान बचा ली थी। मैं डर गया और इस खडहर मकान के अन्दर जाने में इन्कार कर दिया। रूपसी के इस आश्वासन पर कि उनके रहने मेरा किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं हो सकता, मैं मकान के अन्दर चला आया।

गलियारे से होते हुए हम एक हाल में पहुँचे, जिसकी एक दीवार और छत ढह चुकी थी, मिक तीन दीवारे खड़ी थी। रूपमी ने मेरा हाथ छोड़ा और वही खड़ा रहने के लिए कह कर वह अन्दर चली गयी।

थोड़ी देर में मुझे दायी ओर में प्रकाश की किरणें आती हुई दिखायी दी। रूपसी ने अन्दर मशाल जला ली थी।

मैं प्रकाश की ओर बढ़ गया।

अन्दर पहुँचकर मैं आवाक् रह गया। कमरा साज-सामान से भरा-पूरा और सजा हुआ था। इतना सारा सामान अभी तक यहाँ कैसे मौजूद है, इसका मुझे आश्चर्य हो रहा था।

छम-छम करती हुई रूपसी मेरे नजदीक आ गयी।

“मैंने रोशनी कर दी है जय !”

जय ? यह किसके लिए सम्बोधन था ? मेरा नाम तो जय था नहीं। मैंने मुडकर देखा, वहाँ मेरे और रूपसी के अतिरिक्त कोई नहीं था।

रूपमी ने मेरे गाल को अपनी हथेली से धुमाते हुए कमरे में रखे सामान की ओर इशारा करते हुए कहा, “मैंने तुम्हारा सारा सामान सभाल कर रख छोड़ा है जय ! देखो, सब सही है न ?”

मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

रूपसी ने मशाल उठायी और मेरी बाह पकड़कर दूसरे कमरे में ले गयी।

दूसरे कमरे में पहुँचकर मेरा मस्तिष्क चक्कर खाने लगा। एक अजीब-सी धुन्ध मेरी आँखों से हटने लगी। कमरे में रखी वस्तुएँ मुझे जानी-पहचानी-सी लगने लगी। मैं दौड़-दौड़ कर एक-एक वस्तु को छूकर

देखने लगा । कमरे में रखा हुआ पलंग, कुर्सी, मेज, दीवार पर लगी खूटी पर टंगी पोशाकें, चादी की सुराही, पीकदान, कमरबन्द, आवनूस का बक्सा और तिपाही पर रखा हुआ सितार—सब-कुछ मैंने पहिचान लिया । यह सब मेरा था ।

“यह सितार मेरा है ” मैं जोर से चिल्लाया । “मैं ही इसे बजाया करता हूँ ।”

“ हा ! यह सितार तुम्हारा ही है । तुम ही इसे बजाया करते हो । तुम यह सितार बजाते हो, मैं नाचा करती हूँ । जय ! बजाओ सितार ! सितार बजाओ, मैं नाचूंगी ।”

मेरे हाथ मन्त्र-मुग्ध अपने-आप सितार पर चले गये । उगलियो ने तारो को छेड़ दिया । सारा कमरा सगीत से भ्रुकृत हो उठा । रूपसी के पाव स्वयं ही सितार के तारो की स्वर-लहरी में थिरकने लग गये । वह नाच रही थी मैं सितार बजा रहा था । अचानक मैं चिल्लाया, “ रसकपूर !”

रूपसी ने नाचना बंद कर दिया । वह मेरे करीब आ गयी । “ठीक ! तुमने बिल्कुल ठीक पहिचाना । मैं रसकपूर ही हूँ । और तुम तुम ”

“ मैं जयराज हूँ, गुणीजनखाना का मुखिया ।”

“ हा ! बिल्कुल ठीक स्मरण हुआ जय !”

“ यह यह तो मेरा ही घर है ।”

“ बिल्कुल ठीक ! यह वही घर है जिसमें तुम रहा करते थे ।”

“इसे तुमही ने बनवाकर मुझे दिया था ।”

“हाँ ! उस समय मैं आधे जयपुर की मलिका थी । अब तो तुम्हें सब याद पड़ रहा है न ?

“वह शरद-पूर्णिमा की रात ! याद है न ? जिस रात तुमने पहली बार मुझे महाराजा जगतसिंह के दर्शन कराये थे । तुमने सितार बजाया था और मैं नाची थी । यही है वह मितार ! उस रात मैं खूब नाची थी, गायी थी । महाराजा बहुत खुश हुए थे और उन्होंने

भरी सभा मे 'भरी सभा मे ।"

"मुझे सब याद आ रहा है, रसकपूर! मेरे मस्तिष्क मे एक-एक करके वे सारी घटनाएँ अब साफ-साफ अंकित हो रही हैं। सचमुच वह पूर्णिमा की ही रात थी। शरद-उत्सव की रात। शीश-महल मे तब विशेष महफिल जमी थी। महाराजा जगतसिंह गुलाबी पोशाक मे पधारे थे। मैंने सितार बजाया था और तुम खूब नाची थी। तुमने खूब गाया था। और महाराजा ने भरी सभा मे 'भरी सभा मे 'वह पूर्णिमा की रात' "

सन १८०४

शरद पूर्णिमा की रात ।

पूरा शहर दुलहिन की तरह सजाया गया था। शहर की हर दीवार को नये गुलाबी रंग से पोता गया था। खिडकियों के मटमैले काच बदल कर तरह-तरह के रंग-विरंगे नये साफ-स्वच्छ काच लगा दिये गये थे। हर मकान के मुख्य द्वार को विशेष सज्जा के साथ मजाया गया था। चौराहो पर रंग-विरंगी झडियाँ लगायी गयी थी। विभिन्न चौको मे अच्छी विछायत की गयी थी।

शरद-पूर्णिमा की रात मे हर वर्ष जयपुर शहर नये सिरे से सज-धज जाता था। यह रात विशेष उत्सव के रूप मे मनायी जाती थी। पूरी रात विभिन्न मोहल्लो मे, मदिरों मे और राजदरवार मे मगीत की बहार रहती थी। दीपदान के साथ ही पूरा जयपुर शहर सगीतमय हो उठता था।

वृद्धो एव भक्तजनो को महफिलाना जलसा पसंद नहीं था अतः वे मदिरों मे चले जाते थे, जहा भक्तियों (ऐसी बेग्याएँ जो गायन-विद्या मे प्रवीण होती थी और जिनके लिए यौन-व्यापार प्रतिवधित था) सारी रात कीर्त्तन करती रहती थी। इसलिए आज की रात मदिरों मे भी

विशेष प्रकार की सजावट होती थी ।

दीप प्रज्वलित हो चुके थे । सध्या निशा को अपना उज्ज्वल दामन थमा चुकी थी ।

रामगज बाजार के 'हसीन बाजार' में सुबह से नहा-धोकर तैयार हो रही वेश्याएँ पूरा श्रृ गार कर, ढेर सारा इत्र छिड़ककर अपने-अपने ग्राहकों के इक्को के आने का इन्तजार कर रही थी ।

जिन वेश्याओं को मदिरा में जाकर कीर्तन करना था, उन्होंने तडक-भडक वाले कपड़े नहीं पहने थे । सादा लिवास में सादे श्रृ गार के साथ भजनो की किताबें लिये और हाथों में तानपूरे थामे अलग भुंड में खड़ी, अपने ग्राहकों का इन्तजार कर रही थी ।

चटकीले लिवासों में सजी-धजी वेश्याओं के घुघरू अभी से वजने शुरू हो गये थे । विभिन्न भुण्डों में खड़ी ये वेश्याएँ एक-दूसरे का कुशल-क्षेम पूछ रही थी । पैरों के घुघरू उनके हिलने-डुलने से यदा-कदा 'छम-छम' कर वज उठते थे । वे बातचीत करती-करती अपनी कजरारी आँखों की पुतलिया वार-बार सड़क की ओर घुमाकर देख लेती थी कि कहीं उनका ग्राहक आ तो नहीं गया ।

माणिक चौक चौपड़ की तरफ से इक्के रामगज बाजार में आते और पहले से तय हवेली के आगे आकर रुक जाते । अपने ग्राहक को पहिचान कर रूप-मुन्दरिया मुस्करा पड़ती और साजिदों को इशारा कर छम-छम करती हुई इक्के पर सवार हो जाती । खुशबू बिखेरता हुआ इक्का अपने-अपने चौक की ओर चल पड़ता ।

महाराजा जगतसिंह के गद्दीनशीन होने के बाद यह उनकी पहली शरद-पूर्णिमा थी । पूरे जयपुर शहर में शरद-उत्सव जोर-शोर से मनाये जाने का एलान पहले से ही कर दिया गया था ।

चन्द्रमहल में शरद-उत्सव मनाये जाने का विशेष आयोजन किया गया था । शरद-उत्सव में सम्मिलित होने के लिए महाराजा जगतसिंह की रानियों, परदायतों और पासवानों ने नये-नये कीमती वस्त्र सिलवाये

थे। रानियों के लिए नये आभूषण बनवाये गये थे। इनके लिए तरह-तरह के कीमती ड्रग्स मगवाये गये थे। इस अवसर पर महाराजा की तरफ से रानियों को स्वर्णथालों में और परदायतों एवं पासवानों को चांदी के थालों में विशेष उपहार भेजे गये थे।

चंद्रमहल में महफिल का आयोजन 'मुकुट महल' में किया गया था। अपने-अपने ढंग में मजकूर रानियां, परदायतें, और पासवानें मुकुटमहल में आकर अपने-अपने निर्धारित झरोखों के पीछे आकर बैठ गयी थीं। जिन्हें अर्द्धरानी की हैसियत व अधिकार प्राप्त थे, वे परदायतें तथा महाराजा की सेविकाएं व रखैलें पासवान कहलाती थीं।

मुकुटमहल को मजाने में भी काफी परिश्रम किया गया था। दीवारों पर तरह-तरह के कलात्मक भित्ति-चित्र बनाये गये थे। रंग-विरंगी भालरे लटकायी गयी थीं। भांड-फानूसों में सैकड़ों मोमबत्तियां जलायी गयी थीं। फर्श पर नया ईरानी कालीन बिछाया गया था। महाराजा जगतसिंह के बैठने के लिए नया सिंहासन बनाया गया था।

महफिल को सफल एवं मनोरंजक बनाने के लिए गुणीजनखाना के मुखिया जयराज को एक माह पूर्व ही तैयारी करने को कह दिया गया था। और जयराज ने भी महफिल को सफल बनाने के लिए कोई कमर नहीं उठा रखी थी। उसने दूढ़-दूढ़कर कलाकार एकत्रित किये थे। इसके लिए वह जयपुर से बाहर भी हो आया था। कलाकारों को दिन-रात गिनाज करवाकर उसने भरपूर मनोरंजन का अत्यन्त उमदा कार्यक्रम तैयार कर लिया था।

पिछली बार शरद-उत्सव के आयोजन की रूपरेखा पर विचार करने के लिए दीवाने-आम में आयोजित सभा में गुणीजनखाना के मुखिया जयराज ने घोषणा की थी कि वह 'महफिल' में एक ऐसी सुंदर नृत्या-गना, मगीतजा रमणी को प्रस्तुत करेगा जिसके अद्वितीय मौन्दर्य, नृत्य-प्रवीणता और मधुर मगीत को सुनकर सब मुग्ध हो जाएंगे। जयराज ने घोषणा की थी कि इस रूपवती को उसने ठीक इसी उत्सव के लिए

बड़े परिश्रम से खोजा है ।

जयराज द्वारा घोषित रूपसी का सौन्दर्य और नृत्य देखने के लिए दो दिन पूर्व से ही सरदारों का जयपुर में जमघट लगना शुरू हो गया था । अपनी अपनी मूछों पर ताव दिये बाके राजपूत शायद इस अद्वितीय सुन्दरी का मन मोह लेने की फिराक में थे ।

सिर्फ सरदारों में ही नहीं, पूरे शहर में महफिल में पेश होने वाली रूपसी के सौन्दर्य की चर्चा थी ।

ठीक समय पर मुकुटमहल में सरदारों का आना शुरू हुआ । एक-दूसरे का कुशन-श्रेम पूछते हुए सरदार अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर बैठते गये ।

लगभग एक दर्जन परिचारिकाएँ जो सुनहरे वस्त्रों में बहुत आकर्षक लग रही थी, चादी की सुराहियों में मदिरा लिए तितलियों की तरह चारों ओर मंडरा रही थी । एक बादी प्याला सरदार के हाथ में पकड़ा देती और दूसरी बाँदी झुककर अदब के साथ प्याला भर देती । चितवनों के आदान-प्रदान के साथ प्याले होठों से लग जाते ।

मदिरा के दौर के साथ ही हलके सगीत की स्वर-लहरी मुकुटमहल में गूँज रही थी । सार्जिदे अपने हाथ गर्म करने में व्यस्त थे ।

चोवदार ने ऊँची आवाज लगायी —

“होशियार ! सरदारगण होशियार ! समस्त सार्जिदे—कलाकारान् होशियार ! अन्नदाता ! कृपानिधान ! राजराजेश्वर महाराजाधिराज सवाई जगतसिंहजी बहादुर पधार रहे हैं ”

सभी सामन्तों ने अपने प्याले नीचे रख दिये और खड़े हो गये । हाल में निस्तब्धता छा गयी । सगीत रुक गया ।

द्वार पर तैनात प्रहरियों ने भालर सरकाकर कोर्निश की ।

महाराजा जगतसिंह प्रवानमन्त्री के साथ महफिल में प्रविष्ट हुए ।

सभी सरदार और सार्जिदे झुक गये । अपने जुड़े हुए हाथ सभी अपने घुटनों पर ले गये और ‘खम्भा घण्णी’ कहते हुए ऊपर ले आए । ऐसा तीन

वार उन्होंने किया ।

महाराजा के सिंहासनारूढ़ होते ही सब सरदार और फिर सार्जिदे बैठ गये ।

तभी गुणीजनखाना का मुखिया जयराज खड़ा हो गया । उसने घुटनो से ऊपर तक हाथ जोड़कर लाने वाली प्रक्रिया द्वारा महाराजा का अभिवादन किया और फिर महाराजा से 'महफिल' शुरू किये जाने की आज्ञा मागी ।

महाराजा ने अपना दाया हाथ कुछ ऊपर उठाकर गिरा दिया । यह सहमति का सूचक था ।

सार्जिदो की ओर उन्मुख होकर जयराज ने अपने दोनों हाथ फैलाकर गिराते हुए कहा, "राग खमाज ।"

सकेत मिलते ही मृदंग, सारंगी, नाद, मत्तूर, चग, तानपूरा, दिलरूबा, रवाव सब एकसाथ बज उठे ।

महाराजा के हाथ में उनकी विशेष वादी ने प्याला थमाया और दूसरी विशेष वादी ने उसे मदिरा से भर दिया । ये दोनों वादिया ही हर वक्त महाराजा को मदिरा पान कराया करती थी । महाराजा द्वारा प्याला होठों पर लगाते ही सभी सरदारों ने प्याले उठाये और अपने-अपने होठों से सटा दिये ।

सर्वप्रथम चार नर्तकियों ने एक सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किया । इसके बाद एक गायिका ने गजलें पेश की । फिर आगरा से बुलायी गई तवा-यफ सुल्ताना ने गायन के साथ आकर्षक नृत्य प्रस्तुत किया । सुल्ताना के सौन्दर्य, उसकी अदाओं और उसके थिरकते पावों को देखकर सरदार लोग भ्रूम उठे । सुल्ताना पर चादी के सिक्को की बौछार होने लगी । सिक्को की वारिश होते देख सुल्ताना और भी मस्ती से नाचने लगी । 'महफिल' रगत में आ चुकी थी ।

सुल्ताना नाचते-नाचते थक गयी, पर सरदार लोग 'वाह-वाह' कहने में नहीं थके । आखिर सुल्ताना के पाव ढीले पड़ गये और वह थिरकती

हुई एक तरफ को चली गयी ।

जयराज खड़ा हुआ । उसने पुन महाराजा को कोनिश की ओर सभा को सम्बोधित करते हुए बोला, “अन्नदाता ! अब मैं आप लोगो के सामने ऐसी हूर की परी पेश कर रहा हू जो अद्वितीय सुदरी तो है ही, उसकी नृत्यकला का भी जवाब नहीं । इतना ही नहीं, उसके-जैसी सुरीली आवाज भी आप मेहरवानों ने अन्यत्र कही नहीं सुनी होगी ।” फिर जयराज ने पीछे मुड़कर पुकारा, “रसकपूर ! आओ, अब अपनी कला का प्रदर्शन करो ।” और यह कहने के साथ ही सितारस्वयं जयराज ने थाम ली ।

‘छम-छम’ की आवाज के साथ धीमे-धीमे कदमों से रसकपूर झालर मरकाकर हाल में दाखिल हुई ।

हाल के बीचो-बीच आकर रसकपूर सिर झुकाये हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी ।

ऐसा लग रहा था, मानो सगमर्मर की कोई प्रतिमा हाल के मध्य आकर खड़ी हो गयी हो ।

सरदारों के प्याले होठों से सटे-के-सटे रह गये । नेत्र विस्फारित हो गये । क्या जवान, क्या वृद्ध—सभी सरदारों के हाथ अपने-आप सीने के बायीं ओर चले गये ।

नीले कालीन पर हल्के हरे परिधानों में झुकी खड़ी रसकपूर महाराजा के आदेश का इन्तजार कर रही थी ।

महाराजा स्वयं रसकपूर के सौन्दर्य में अपना होशोहवास खो बैठे थे । वे सुध-बुध खोये लगातार रसकपूर को देखे जा रहे थे ।

खड़े-खड़े जब रसकपूर थक गयी तो उसने पलकें उठाकर महाराजा की ओर देखा ।

पलकों का उठना था कि दो सीप सरीखी आखें चमक उठी । महाराजा उन आखों में डूबते चले गये । उनका हाथ अभी तक आदेश देने हेतु ऊपर नहीं उठा था ।

रसकपूर कब तक इस प्रकार झुकी खड़ी रहती । उसने थोड़ा-सा पैर हिलाकर घुघरू बजा दिये । महाराजा सहित सभी सरदारों की चेतना वापस लौट आयी । महाराजा ने दाया हाथ कुछ ऊपर उठाकर गिरा दिया । आदेश पाकर रसकपूर तबले की ताल पर थिरकने लगी ।

ऐसा लुभावना नृत्य महाराजा ने पहले कभी नहीं देखा था । रसकपूर के अंग-अंग को थिरकते देखकर उनकी आँखें फटी की फटी रह गयी थी । रसकपूर विजली की तरह नाच रही थी । सितार बजाता हुआ जयराज आज एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव कर रहा था ।

सरदार नृत्य देखकर भूम उठे । फिर क्या था, गले में से मोतियों की मालाएँ निकलने लगी, उगलियों में से अगूठिया बाहर आ गयी, सब कुछ रसकपूर पर न्यूँछावर होने लगा ।

अचानक महाराजा सिंहासन से उठकर खड़े हो गये ।

“बस करो सुदरी ! तुम्हारे नाजुक पाव अब थक गये होंगे ।”

महाराजा की कद्रदानी पर दिलोजान से न्यूँछावर होते हुए रसकपूर ने नृत्य बंद कर दिया ।

लडखड़ाते कदमों से चलकर महाराजा स्वयं रसकपूर के पास पहुँचे ।

“मच ! जैसा मुना था वैसा ही है ! ऐसा सौन्दर्य अन्यत्र नहीं हो सकता !” महाराजा ने रसकपूर का हाथ अपने हाथ में लेकर चूम लिया, “ये अगूरी आँखें, ऐसा सगमर्मरी वदन, गुलाब की पखुडियों-मरीखे होठ अन्य किसी के नहीं हो सकते । रूपसुदरी ! क्या नाम है तुम्हारा ?”

“रसकपूर !” कहकर रसकपूर मिर झुकाये खड़ी रही ।

महाराजा ने प्याला एक ओर फेंक दिया । अपनी दोनों हथेलियों में रसकपूर का मुँह भरकर ऊपर उठाया और कहा, “रूपसुदरी, मेरी आँखों में देखो ।”

महाराजा का स्पर्श पाकर रसकपूर का चेहरा रक्त वर्ण हो गया । लज्जा के भाव चेहरे पर उभर आए । उसने धीरे-धीरे अपनी पलकें ऊपर

उठायी । महाराजा की आखों से टकराकर उसकी नजरे वापस नीचे गिर गयी ।

सुध-बुध खोये महाराजा ने भरी सभा में समस्त अदवों को वालाये-ताक पर रखते हुए रसकपूर की ठोड़ी पकड़कर चेहरा ऊपर उठाया और उसके होठों पर भुंक गये ।

महाराजा का यह आचरण अप्रत्याशित था । सब सरदार यह दृश्य देखकर हक्के-वक्के रह गये ।

ऊपर भरोखों से महफिल का आनन्द ले रही रानिया महाराजा के भरी सभा में एक वेय्या पर आसक्त होकर भुंक जाने को अपनी आखों से देख नहीं सकी और गगन खाकर गिर पड़ी । पारदायतो और पासवानों ने अपनी आखें मूढ़ ली ।

“अद्भुत सुदरी ! मागो, जो तुम्हें मागना है । आज तुम्हारी हर मुराद पूरी होगी ।”

रसकपूर ने अदब जताते हुए कहा, “अन्नदाता ! मैं नाचीज इस कृपा के योग्य नहीं हूँ । आपके दर्शन सुलभ रहे, यही मेरी अभिलाषा है ।”

“है जो तुम्हारी अभिलाषा, वही है अब मेरी भी अभिलाषा ! तुम्हारी मुराद पूरी होगी ।” प्रसन्नचित्त महाराजा ने एक बार फिर रसकपूर को चूम लिया ।

“अन्नदाता ! मैं नाचू ?” रसकपूर ने पूछा ।

“नहीं । अब यह कोमल शरीर काफी थक चुका होगा । इसे अब आराम चाहिए ।” फिर वे सरदारों की ओर उन्मुख हुए, “महफिल समाप्त हुई ।”

सभी सरदार महाराजा को कोर्निश करते हुए मुकुटमहल से बाहर चले गये । सार्जिदे भी अपने-अपने साज उठाकर चल पड़े । अब वहाँ मिर्फा गुणीजनखाना का मुखिया जयराज अकेला किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा था ।

“जयराज ! आज तुमने मुझे वह हसीन तोफा दिया है, जिसके लिए मैं तुम्हें जो भी इनाम दूँ, वह थोड़ा है । तुम्हें सागानेर की जागीर वस्खी

जाती है। अब तुम जाओ, कल हाजिर होना। रसकपूर अब यही रहेगी, हमारे पास।”

जयराज ने महाराजा को कोर्निश की और कालीन पर पड़े एकमात्र साज सितार को उठाकर चल पड़ा।

महाराजा ने रसकपूर से पूछा, “सुन्दरी! क्या तुम इस महल में रहना पसंद करोगी?”

रसकपूर ने महाराजा के सीने पर अपना भिर टिकाते हुए कहा “जैसी अन्नदाता की इच्छा।”

महाराजा बहुत खुश हुए। उन्होंने ताली बजाकर सेवकों को बुलाया और प्रकाश समाप्त कर देने का आदेश दिया।

शहर में सर्वत्र चर्चा फैल गयी कि महाराजा ने एक ‘भक्तन’ (ऐसी वेश्या जिसे किराये पर मदिरो में भजन गाने के लिए बुलाया जाता था, तथा जिसे शारीरिक पवित्रता बनाये रखना जरूरी होता था, यह सिर्फ मुजरा कर सकती थी, इसके लिए यौन-व्यापार प्रतिबन्धित था) को महल में रख लिया है। रसकपूर के सौन्दर्य, नृत्यकला और सुरीले स्वर की चर्चा के साथ लोग महाराजा के व्यवहार की कड़ी आलोचना कर रहे थे।

गुप्तचरो ने नगर कोतवाल को सूचना दी कि जयपुर की रियाया ने रसकपूर को महल में रखे जाने को पसंद नहीं किया है।

नगर कोतवाल ने शहर और मामन्तवर्ग में रसकपूर को लेकर हो रही चर्चा से प्रधानमंत्री को अवगत कराया।

यह सुनकर प्रधानमंत्री चिंतित हो उठे। महाराजा को लोगों की प्रतिक्रिया बताने के लिए वे राजमहल में पहुँचे।

प्रधानमंत्री को मुख्य अग्ररक्षक ने बताया कि महाराजा अभी तक छवि-निवास से बाहर नहीं निकले हैं और छवि-निवास में रसकपूर भी उनके साथ है।

प्रधानमंत्री दोपहर तक महाराजा के छवि-निवास से बाहर निकलने का इतजार करते रहे। अन्त में निराश होकर वह अपने निवास को लौट आये।

महाराजा शाम तक छवि-निवास से बाहर नहीं निकले। सध्या में गोविंददेवजी के मंदिर में शख, नगाडो और घण्टियों की जब आवाज हुई तब कहीं उनकी तन्द्रा टूटी। छवि-निवास के पट खुले और महाराजा रसकपूर के साथ आरती में शामिल हुए।

आरती के बाद अप्रत्याशित रूप से रसकपूर ने भजन गाना शुरू कर दिया। सारा चन्द्रमहल मधुर कण्ठ के आलाप से गूँज उठा। किसी ने भी इसके पूर्व इतना सुरीला गायन नहीं सुना था। रानियां यह स्वर सुन कर चौंक पड़ी तथा भक्तजन अल्लादित हो उठे। पुजारी ने रसकपूर को आशीर्वाद दिया।

आरती के बाद महाराजा रसकपूर को पुनः छवि-निवास में ले गये।

पूरे एक सप्ताह बाद महाराजा का खुमार उतरा और वे राजकाज को निपटाने हेतु दरबार में आये। विभिन्न विभागों के मंत्रियों ने राजकाज से सम्बन्धित कारवाई शुरू की, परन्तु कुछ ही देर में महाराजा उकता गए। और “प्रधानमंत्री से ही पूछ लें। मैं उन्हें अधिकृत करता हूँ।” कहते हुए वापस छवि-निवास में चले गये।

प्रधानमंत्री को, शहर में हो रही चर्चा और रसकपूर को राजमहल में पनाह देने पर सरदारों में हुई प्रतिक्रिया के बारे में महाराजा को अवगत कराने का समय ही नहीं मिला।

प्रधानमंत्री ने शीघ्रता से सारा राजकाज निपटाया और समस्या का समाधान ढूँढने के प्रयोजन से एकान्त चिंतन हेतु गोविंददेवजी के मंदिर के पिछवाड़े चले गये।

दो घंटों के गहन चिंतन के बाद प्रधानमंत्री इस नतीजे पर पहुँचे कि चूँकि रसकपूर को राजमहल में प्रवेश दिलाने वाला गुणीजनखाना का मुखिया ही है, इसलिए उसका सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिये।

परन्तु जिस समय प्रधानमंत्री गोविंददेवजी के मंदिर से शरवते में लौटे, गुणीजनखाना का मुखिया जयराम अपने घर के लिए प्रस्थान कर चुका था ।

प्रधानमंत्री ने मुख्य अग्निरक्षक से महाराजा के सम्बन्ध में ताजा स्थिति की जानकारी प्राप्त की । अग्निरक्षक ने उन्हें बताया कि महाराजा का अब भी वही आलम है जो एक हफ्ते पहले था । प्रधानमंत्री राजमहल से मीठे जौहरी बाजार सब्जीमंडी में स्थित जयराम के आवाम पर पहुंचे ।

दिन भर के रियाज से थककर जयराम अभी थोड़ी देर पहले ही घर लौटा था और जिस समय प्रधानमंत्री की वगंधी आकर उसके द्वार पर रुकी, वह गहन को जा चुका था ।

कामदार ने प्रधानमंत्री का अभिवादन किया और अदब के साथ पूछा "क्या मुखिया जयराम को जगा दिया जाए ?"

किंचित सोचकर प्रधानमंत्री ने कहा, "नहीं । उससे कह देना, कल राजमहल में आते ही मुझसे मिल ले ।"

"जो हुकम ।" "कहकर कामदार ने प्रधानमंत्री को कोनिंग की ।

प्रधानमंत्री को रात-भर नींद नहीं आयी । सारी रात वह समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते रहे । रसकपूर का भूत जिस हद तक राजा पर चढ़ चुका था, उसे अब शीघ्र ही उतारना आवश्यक था । अन्यथा रसकपूर यदि महाराजा के पास और अधिक दिनों तक रही तो राजकाज के चौपट हो जाने और अनेक समस्याओं के खड़ा हो जाने का खतरा था । राज्य की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति ठीक न रहने से, जहां राज्य के लिए बाह्य आक्रमण का खतरा बना हुआ था, वहां आंतरिक हालात भी अच्छे न थे । कुछ मरदार सिर उठाने लगे थे ।

रात-भर चिंतन के बाद प्रधानमंत्री इस नतीजे पर पहुंचे कि किसी प्रकार महाराजा के मन में रसकपूर के प्रति घृणा पैदा की जाये ।

रसकपूर कौन है ? कहा में आयी है ? वह कौन-सी महत्वाकांक्षा

रखती है ? और यदि उसे धन का ही लोभ है तो समस्या का शीघ्र समाधान मिल जाने की आशा हो सकती है । उसे पर्याप्त धन देकर वश में किया जाय और महाराजा के प्रति उसके व्यवहार में ऐसा परिवर्तन लाया जाय कि महाराजा स्वयं ही रसकपूर से घृणा करने लगें । रसकपूर के बारे में विस्तार से जयराज से जाना जा सकता है । प्रातः उससे मिलकर ही समस्या का हल ढूँढ़ने का निश्चय करके प्रधानमंत्री ने अपनी आखें बन्द कर ली ।

सवेरे समस्या सुलझने के वजाय और अधिक उलझ गई । प्रधानमंत्री जब राजमहल में पहुँचे, उन्हें बताया गया, महाराजा एक पखवाड़े के लिए रसकपूर को लेकर चन्द्रमहल से जयगढ़ को चले गये हैं । महाराजा ने किसी को भी जयगढ़ आने के लिए प्रतिवधित कर दिया है । प्रधानमंत्री के लिए हिदायत छोड़ गये हैं कि वे उनकी अनुपस्थिति में आवश्यक राज-काज निपटाते रहे ।

प्रधानमंत्री जलेब चौक स्थित अपने कार्यालय में आ गये और जयराज की प्रतीक्षा करने लगे ।

उन्होंने अभी आवश्यक कागजात देखने शुरू किये ही थे कि चौबदार ने आकर सूचना दी—चादसिंह मिलने आये हैं ।

चादसिंह जयपुर रियासत का प्रभावशाली सामन्त था । राजमहल के अन्दर और बाहर उसकी काफी प्रतिष्ठा थी । वह प्रखर राजनीतिज्ञ और कुशल सेनापति था । जयपुर दरबार में तो वह एक प्रमुख सलाहकार माना जाता था ।

प्रधानमंत्री ने तुरत चादसिंह को अदर भेजने के लिए कहा ।

प्रधानमंत्री ने समझा, दूनी का सामन्त चादसिंह किसी राज-काज से आया होगा, परन्तु वार्ता से पता चला कि वह भी रसकपूर की समस्या से चिंतित होकर आया है । चादसिंह ने, 'महफिल' में महाराजा द्वारा किये गये आचरण और रसकपूर को लेकर महल में बैठे रहने पर, प्रधानमंत्री के सामने गहरी चिंता व्यक्त की । प्रधानमंत्री ने भी अपनी चिंता

चादसिंह की चिंता के साथ जोड़ दी और दोनों एक साथ समस्या का समाधान ढूँढने लगे। काफी सोच-विचारकर चादसिंह ने सुभाया कि रसकपूर को त्याग देने के लिये राजमाता द्वारा महाराजा पर दवाव डलवाया जाय। प्रधानमंत्री को यह सुझाव किसी हद तक उपयोगी लगा।

दूनी के सामन्त चादसिंह और प्रधानमंत्री के बीच विचार-विमर्श अभी चल ही रहा था कि चौवदार ने जयराज के आने की सूचना दी।

“हाजिर किया जाय।” जवाब दूनी के सामन्त ने दिया।

जयराज के लिए प्रधानमंत्री द्वारा इस प्रकार बुलाया जाना अप्रत्याशित था। विशेष परिस्थितियों में ही प्रधानमंत्री मुखियाओं को अपने कार्यालय में बुलाया करते थे, अन्यथा सारी बातचीत राज-काज निपटाये जाने के दौरान गरवते में ही हो जाती थी। जयराज किसी भावी शका से ग्रस्त अदर दाखिल हुआ।

प्रधानमंत्री ने बिना वक्त जाया किये जयराज से पूछा, “रसकपूर कौन है? तुम उसे कहा से लाये हो? वह क्या चाहती है? क्या वह धन की लोभी है?”

एकाएक इतने सारे प्रश्न पूछे जाने में जयराज हतप्रभ रह गया। वह हाथ जोड़े खड़ा रहा।

दूनी के सामन्त चादसिंह ने अपनी मूछों पर ताव देते हुए और तोड़ पर वधे रेशमी कमरबन्द की गाँठ को मजबूत करते हुए जोर में कहा “सब सच-सच बताओ।”

रसकपूर के बारे में जयराज जितना जानता था, वह उसने बिना हेर-फेर के बता दिया। जयराज ने उन्हें बताया कि रसकपूर एक ‘भक्तन’ थी। जयपुर में कहीं वह बाहर से आयी थी। हालांकि वह बनिया परिवार की है, पर लाचारी में उसे जयपुर आकर यह पेशा अख्तियार करना पड़ा था। अन्य भक्तनों के साथ उसे भी मंदिरों में किराये पर भजन गाने के लिए बुलाया जाता था। डबर वह अपने मधुर कण्ठ की वजह से शीघ्र ही मंदिरों में लोकप्रिय हो गयी थी। उसे भी वह एक मंदिर में ह

मिली थी। उसकी आवाज से प्रभावित होकर ही जयराज ने उसे गुणीजन-खाना में बुलवाया था और शरद-उत्सव के लिये तैयार किया था।

अपनी मूछों पर हाथ फेरता हुआ चादसिंह कुछ देर तक सोचता रहा, फिर उसने जयराज को इशारा कर चले जाने को कहा।

जयराज चला गया।

दूनी के सामन्त ने प्रधानमंत्री को एक और सुझाव दिया, “मेरा विचार है कि एक और महफिल का आयोजन किया जाय।”

चादसिंह के इस सुझाव से प्रधानमंत्री चौंक पड़े, “ऐसा किस लिए?”

चादसिंह ने महफिल का उद्देश्य प्रधानमंत्री को बताया। प्रधानमंत्री ने सिर हिलाकर सहमति व्यक्त की।

एक पखवाड़े के बाद महाराजा जगतसिंह जयगढ़से नीचे उतर आए, चन्द्रमहल में पहुँचते ही उन्होंने मिस्त्रीखाना के मुखिया को बुलवाया और जयगढ़ में कुछ नये निर्माण किये जाने का आदेश दिया। रसकपूर को जयगढ़ उतना आरामदायक नहीं लगा था।

आदेशानुसार मिस्त्रीखाना का मुखिया एक सौ मजदूरों और कारीगरों के साथ जयगढ़ के नवीनीकरण और सौन्दर्य-अभिवर्द्धन में जुट गया।

चन्द्रमहल के भी एक खण्ड को नये सिरे से सजाया गया और उसमें रसकपूर का आवास बनाया गया। महाराजा जगतसिंह ने रसकपूर के आवास का नाम ‘प्रियतम निवास’ रखा। रसकपूर की सेवार्थ दो दर्जन नयी परिचारिकाओं की नियुक्ति की गयी।

जयगढ़ से लौट आने के बाद महाराजा राज-काज में आशिक रुचि लेने लग गये थे। प्रधानमंत्री और दूनी का सामन्त चादसिंह कोई-न-कोई काम निकालकर महाराजा को अधिक से अधिक व्यस्त रखने का प्रयास करते रहते थे।

शहर में रसकपूर को लेकर उठी चर्चा खत्म तो नहीं हुई थी पर

हा, ठडी जरूर पड गयी थी। चन्द्रमहल मे भी प्रात काल और सध्या की आरती के समय रसकपूर के भजनो के आलाप की सुरीली आवाज ने रानियो, परदायतो और पासवानो के क्षोभ को भी काफी हद तक कम कर दिया था।

महल मे प्रतिष्ठित होने के बाद रसकपूर ने विवेक से काम लेना शुरू किया। शहर मे उसको लेकर हुई चर्चा और जनानी ड्यौढी मे हो रही फुसफुसाहट से वह परिचित थी। हर वक्त महाराजा के उसकी खुमारी मे पडे रहने से विद्रोह हो सकता था। इस तथ्य को मद्दे-नजर रखते हुए रसकपूर कभी-कभार बीमारी का वहाना कर महाराजा को अन्य रानियो के पास भेज दिया करती थी।

उधर अपनी योजनानुसार प्रधानमंत्री के साथ मिलकर दूनी के सामन्त ने आमेर के महल मे एक विराट जलसे का आयोजन किया। सामन्त चार्दसिंह डम जलसे मे भारी भीड एकत्रित करना चाहता था। अत जलसे का भारी प्रचार किया गया तथा हर खास नागरिक को इस मे मम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया गया।

दक्षिण से एक सुप्रसिद्ध नृत्यागना को इस जलसे मे नृत्य प्रस्तुत करने के लिये अपार धन व्यय करके बुलाया गया था। विजयलक्ष्मी नामक यह नृत्यवाला काफी सुंदर थी। उसके लम्बे वालो और बड़ी-बड़ी शखा-कार आखो की कोई तुलना नहीं थी। दुबली-पतली रसकपूर की अपेक्षा भरे हुए वदन की विजयलक्ष्मी की मामलता विशेष मादकता उत्पन्न करती थी। चार्दसिंह और प्रधानमंत्री का दक्षिण की इस सुंदरी को जयपुर बुलाने का मतव्य महाराजा को विजयलक्ष्मी के प्रति आकर्षित कर उनको रसकपूर से विलग करना था। अपने उद्देश्य मे सफल होने के लिए दोनो ने गुणीजनखाना के मुखिया जयराज पर भी काफी दबाव डाला था। नृत्य के दौरान सितार-वादन की प्रमुखता को अनुभव करते हुए जयराज से कहा गया था कि वह दक्षिण से बुलायी गयी नृत्यागना विजयलक्ष्मी का नृत्य मफल करे और यदि प्रतियोगिता मे रसकपूर उतर

आये तो उसका नृत्य असफल करा दे ।

दोनों ने अपने विश्वसनीय अनुचरो द्वारा जलसे और विजयलक्ष्मी की सुंदरता की खूब चर्चा फैलायी । विजयलक्ष्मी के बारे में अनेक बातें कही गयीं । वह अद्वितीय सुंदरी है । उस जैमी बड़ी आखें विश्व की किसी अन्य स्त्री की हो ही नहीं सकती । नाचने में तो वह साक्षात् नट-राज है । चौबीस घंटों तक लगातार नाचकर भी वह नहीं थकती । उसका तो हर अंग नृत्य करता है । आदि-आदि ।

ऐसी प्रसंगा सुनकर लगा जैसे पूरा शहर ही विजयलक्ष्मी को देखने के लिये उमड़ पड़ेगा ।

जनानी डायीडी में अवश्य इस प्रचार की विपरीत प्रतिक्रिया हुई । रानिया, परदायतों और पासवानों आगे ही रसकपूर से परेशान थी, अब महाराजा के मामले एक और सुंदर नृत्यवाला के पेश होने की खबर सुनकर उनके चेहरे उतर गये ।

आमेर महल के विशाल जलेब चौक को विशेष रूप से सजाया गया था । चौक के बीचो-बीच एक ऊँचा मंच बना दिया गया था ।

देखते-देखते जलेब चौक भर गया । तिल रखने की जगह भी शेष नहीं बची । सरदारगण आकर अपने-अपने नियत स्थानों पर बैठ चुके थे । परिचारिकाओं ने मदिरा के प्याले भरना शुरू कर दिये थे ।

भिलाय के ठाकुर ने इमरदा के रावराजा से पूछा, “यह आयोजन किस उपलक्ष्य में हो रहा है ?”

जवाब डिग्गी के ठाकुर मेघसिंह ने, मदिरा का प्याला होठों से सटाते हुए दिया, “दक्षिण से एक परी आयी है । उसे महाराजा के सामने पेश किया जा रहा है ।”

‘हूँ !’ कहते हुए भिलाय के ठाकुर ने भी अपना चादी का गिलास अधरो पर टिका लिया ।

नगाडा बजा । चौबदार की आवाज गूजी—

“बाबदव, वामोलाहिजा होशियार ! आम रियाया होशियार !

सरदारगण होशियार । राज राजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतमिहजी वहादुर पधार रहे हैं ।”

सरदारों ने अधरो से प्याले हटाकर नीचे रख दिये और महाराजा के सम्मान में खड़े हो गये ।

उपस्थित जनसमुह ने जय-जयकार कर महाराजा का अभिवादन किया ।

सब लोग तब तक सिर झुकाये खड़े रहे जब तक महाराजा सिंहासन पर बैठ न गये । उनके विराजते ही पुनः एक बार जयधोष हुआ और सभी कोनिश करते हुए बैठ गये ।

महाराजा रसकपूर को भी साथ लाये थे । उसके साथ आने की पहले से ही सम्भावना थी वत महाराजा के वगल में बायी ओर उसके बैठने की व्यवस्था कर दी गई थी ।

रसकपूर शाही पोशाक में आयी थी । हरे रेशमी लहंगे के ऊपर काली चोली और उस पर हरी चुनरी लहरा रही थी । नये आभूषणों ने उसका आकर्षण और अधिक बढ़ा दिया था ।

एक तीखी नज़र रसकपूर पर फँकते हुए चादसिंह ने प्रधानमन्त्री के कान में कहा, “जाने कैसा जादू कर डाला है इस नागिन ने महाराजा पर ।”

प्रधानमन्त्री, जो मन्च की ओर देख रहे थे, सिर्फ ‘हा’ कहकर चुप हो गये ।

जयराज मंच पर खड़ा हो गया । उसने महाराजा को कोनिश की ओर जलसा शुरू किये जाने की आज्ञा मांगी ।

आजकल महाराजा हर काम रसकपूर से पूछकर ही शुरू करते थे । उन्होंने रसकपूर की ओर देखकर पूछा, “क्या कार्यक्रम शुरू कराया जाये ?”

अधरो पर एक हल्की-सी मुस्कान बिखरते हुए रसकपूर ने अपनी महीन पनन्दी आवाज़ में कहा, “हा ।”

महाराजा ने अपना दाया हाथ कुछ ऊपर उठा कर गिरा दिया ।

महाराजा से अनुमति पाकर जयराज मंच पर बैठे हुए सार्जिदो की ओर मुड़ा और दोनों हाथ फैलाकर उन्हें सगीत शुरू करने का आदेश दिया ।

तमाम महल मगीत से गूज उठा ।

दस मिनट तक सगीत की स्वर-लहरी से पहले माहौल बनाया गया और फिर सगीत रुकवाकर जयराज मंच पर खड़ा हो गया । उसने पुन महाराजा का अभिवादन किया और नृत्यसुदरी विजयलक्ष्मी के मंच पर आने की घोषणा की ।

लोगों की सासें रुक गयी । हुस्न की परी को देखने के लिए सब वेताव हो उठे । स्वयं रसकपूर, जिसने विजयलक्ष्मी के बारे में किया गया प्रचार सुन रखा था, विस्मयपूर्ण मुद्रा लिये मंच की ओर देख रही थी ।

निस्तब्ध वातावरण 'छम छम' की आवाज से टूटा और विजली की फुर्ती से विजयलक्ष्मी मंच पर आ गयी । विजयलक्ष्मी ने घुघरुओं की एक थाप दी और फिर मिर झुकाकर महाराजा का अभिवादन किया ।

जैसा प्रचार किया गया था, विजयलक्ष्मी लगभग वैसी ही थी । दक्षिण की यह सुदरी ऊपर से नीचे तक एक ही साचे में ढली हुई थी । पीठ पर झूल रही केशवर्तिका उसके नितम्बों से भी एक वित्ता नीचे तक चली गयी थी । आखें सचमुच बड़ी-बड़ी थी । पलकों पर विशेष ढग से लगाया गया काजल उसकी सुन्दरता में अभिवृद्धि कर रहा था । कसे हुए वस्त्रों में सुन्दरी के वक्षों एवं नितम्बों के उभार लोगों के मस्तिष्कों में विजली कौंधा रहे थे । नीली कचुकी गौराग उन्नत मासल उरोजों को सभाल पाने में अममर्थ मिद्ध हो रही थी । (संभवत महाराजा को आकर्षित करने के उद्देश्य से विजयलक्ष्मी को जानबूझ कर छोटी कचुकी पहनायी गयी थी ।) नाभि के नीचे दक्षिण भारतीय ढग से बांधी हुई साड़ी, जघाओं से चिपकी हुई उसकी पिंडलियों की मुडौलता को दर्शा रही थी । गौर धवल पीठ पर कचुकी की बंधी हुई गहरी नीली डोर के अलावा कुछ न था ।

“ सुन्दर ! अति सुन्दर ॥ ” सब लोग एक साथ ‘वाह-वाह’ कह उठे ।

महाराजा भी विस्मय-मुग्ध नजरो से विजयलक्ष्मी को देख रहे थे ।

महाराजा के चेहरे पर मौन्दर्य के पडे प्रभाव को देखकर चादसिंह और प्रधानमंत्री बहुत खुश हुए और एक-दूसरे की ओर देखकर अपनी सफलता पर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे ।

विजयलक्ष्मी ने नटराज की मुद्रा मे एक बार मच पर चारो तरफ घूम कर ममस्त उपस्थित दर्शको का अभिवादन किया और फिर तबले की थाप पर उमने नृत्य शुरू कर किया ।

मात्र जोरो से बज उठे और लय पर विजयलक्ष्मी थिरकने लगी ।

विजयलक्ष्मी ने भारत-नाट्यम प्रस्तुत किया । जयपुर की जनता ने कथक नृत्य का तो कई बार आनन्द लिया था परन्तु भारत-नाट्यम का भव्य प्रदर्शन आज ही वह देख रही थी ।

विजयलक्ष्मी ने भी कोई कमर नहीं उठा रखी । उमने उच्च कोटी का नृत्य प्रस्तुत किया ।

मामन्त और दर्शक भूम उठे । महाराजा भी बहुत प्रभावित हुए । वे विस्फारित नेत्रों मे थिरक रही विजयलक्ष्मी को देख रहे थे ।

मामन्त चादसिंह और प्रधानमंत्री की नजरें रसकपूर की प्रतिक्रिया जानने के लिए उमके चहरे पर गयी । रसकपूर निर्लिप्त भाव मे नृत्य देख रही थी । उमके चहरे पर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, विषाद, शोभ अथवा हीनता का कोई भाव न पाकर दोनों निराश हो गये ।

नृत्य पराकाष्ठा पर था । दक्षिण की नृत्यागना का अग-अग नाच रहा था । मामल शरीर मे उठ-गिर रही लहरे दर्शको को तरंगित कर रही थी । आँखों की पुतलिया विजनी की तरह चमक रही थी । नितम्बों मे टकरा कर केगवर्तिका बार-बार ऊपर उछल जाती थी ।

दो घण्टो तक लगातार नाचने के बाद विजयलक्ष्मी ने नृत्य समाप्त किया । भारी करतल-ध्वनि हुई ।

रसकपूर ने देखा महाराजा ने भी करतल-ध्वनि की है ।

“ वाह-वाह ! ” “ खूब नाची ! ” के शोर से सारा वातावरण गूँज उठा ।

सामन्त चादसिंह ‘ वाह-वाह ’ करता हुआ दोनों हाथ फैलाये मच की ओर दौड़ पड़ा । वह मच पर पहुँच गया । उसने विजयलक्ष्मी का हाथ चूमकर कहा, “ तुम न सिर्फ अनुपम सुदरी हो, एक कुशल नृत्यागना भी हो । मैं दावे के साथ कह सकता हूँ, तुम्हारे रूप और नृत्य के सामने विश्व की कोई कलाकार नहीं ठहर सकती । हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं । तुम्हें दूनी जागीर की तरफ से एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ उपहार स्वरूप दी जाती हैं । ”

जन-समूह ने पुनः करतल-ध्वनि की ।

चादसिंह ने कहना जारी रखा, “ और तुम्हें दूनी में आकर रहने का आमन्त्रण भी दिया जाता है । वहाँ तुम्हें वैभवपूर्वक बसाया जायेगा । ”

सामन्त चादसिंह और प्रधानमंत्री को आशा थी, अठारह वर्षीय अल्प वयस्क महाराजा विजयलक्ष्मी के रूप और कला पर फिसल चुके होंगे और रसकपूर की उपेक्षा करके विजयलक्ष्मी को अपने नजदीक बुला लेंगे । परन्तु उन दोनों ने देखा महाराजा ने ऐसा कुछ नहीं किया । वे सिर्फ विस्फारित नेत्रों से मच की ओर निहार रहे थे ।

विजयलक्ष्मी मन-ही-मन में खुश होती हुई दूनी के सामन्त के सामने झुककर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने लगी ।

चादसिंह ने एक बार फिर जोर-जोर से कहना शुरू किया, “ मैं फिर कहता हूँ, विजयलक्ष्मी के टक्कर की कोई अन्य रूपसी और कलाकार इस धरती पर हो ही नहीं सकती । ”

रसकपूर से अब रहा नहीं गया । उसने सामन्त चादसिंह की चुनौती स्वीकार की और अपनी जगह से उठकर खड़ी हो गयी । रसकपूर ने महाराजा से अपनी कला प्रदर्शित करने के लिए आज्ञा मागी । रसकपूर की आखों में नृत्य करने की प्रबल और स्पष्ट इच्छा को देखकर महाराजा

ने उसे नृत्य करने की इजाजत दे दी ।

रसकपूर सीधी मंच पर पहुँची । उसने विजयलक्ष्मी द्वारा उतारे गये घुघरू अपने पैरो में बांधे और जयराज की ओर मुड़ी । जयराज चुपचाप मुह झुकाये बैठा था । प्रधानमंत्री और सामन्त चादसिंह ने उस पर रसकपूर का साथ न देने के लिए दबाव जो डाला हुआ था । स्थिति का अनुमान लगाते हुए रसकपूर ने कहा, “कला की कद्र करने वाला ही आज कला की हत्या करना चाहता है ।”

जयराज ने एक बार सिर उठाकर ऊपर देखा, फिर पुन नीचे देखने लगा ।

महाराजा बोले, “रसकपूर, नृत्य शुरू करो ।”

“महाराजा ! मैं तब तक नहीं नाच सकती जब तक जयराज स्वयं सितार बजाकर मेरा साथ नहीं देता ।” मंच पर से रसकपूर ने कहा ।

“मेरा हुक्म है, जयराज सितार बजाये ।”

महाराजा की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य था । जयराज मन-ही-मन बहुत खुश हुआ । महाराजा का आदेश होने से वह प्रधानमंत्री और सामन्त चादसिंह के कोपभाजन से बच गया । जयराज ने भटपट सितार उठाया और उसकी उगलिया जादू की तरह सितार की तारों पर थिरकने लगी ।

रसकपूर ने नृत्य शुरू किया । उसने भी दक्षिण का भारत-नाट्यम ही प्रस्तुत किया । चंद क्षणों में ही उसका एक-एक अंग-अंग थिरकने लगा । लोग रसकपूर का नृत्य देखकर मंत्रमुग्ध हो गये । रसकपूर का नृत्य विजयलक्ष्मी में कहीं अधिक सघा हुआ और कलात्मक था । नृत्य की समाप्ति पर दर्शकों ने दूने जोश के साथ करतल-ध्वनि की ।

रसकपूर अपनी विजय पर मुस्करायी । एक हल्की नजर प्रधानमंत्री और सामन्त चादसिंह के चेहरों पर डालकर वह मंच में उतर कर महाराजा की बगल में आ गयी ।

प्रधानमंत्री और चादसिंह का चेहरा पराजय से उतर गया था ।

हर्षोल्लास के साथ जलसा समाप्त घोषित किया गया ।

अगले दिन जयराज की प्रधानमंत्री के यहा पेशी हुई ।

जिस समय जयराज वहा पहुंचा, दूती का सामन्त पहले से ही वहा बैठा हुआ था ।

जयराज ने दोनों प्रमुखों का बारी-बारी से अभिवादन किया और एक कोने में खड़ा हो गया ।

प्रधानमंत्री की भौहे चढ़ी हुई थी । सामन्त चादर्सिंह तो आपे से बाहर हुआ जा रहा था । जयराज दोनों की क्रुद्ध आंखों को अधिक देर तक नहीं भेल सका और उसने अपनी नजरें झुका ली ।

प्रधानमंत्री ने कड़क कर पूछा, "तुमने तो कहा था, रसकपूर उत्तराखण्ड की रहने वाली है ।"

"जी, हुक्म ! मैंने ठीक ही सुना था । रसकपूर उत्तराखण्ड की ही रहने वाली है ।" जयराज ने निहायत नम्रता के साथ कहा ।

"तो फिर वह दक्षिण का नाच कैसे जानती है ?" सामन्त चादर्सिंह ने गर्जते हुए पूछा ।

"मुझे भी इस बात का कल उसका नृत्य देखने के बाद ही पता चला है, हुजूर ! मैं नहीं जानता, रसकपूर ने दक्षिणी-नृत्य कैसे और कहा सीखा ।"

जयराज उन इने-गिने मुखियाओं में से था, जो कभी विवादास्पद नहीं रहे । अतः उसके साथ अधिक सख्ती से पेश आना प्रधानमंत्री को उचित प्रतीत नहीं हुआ । उन्होंने रसकपूर के अतीत की पूरी जानकारी हासिल कर लाने का आदेश देकर जयराज को विदा कर दिया ।

"जो आज्ञा ।" कहता हुआ जयराज दोनों प्रमुखों को नमन करता हुआ चला गया ।

वस्तुतः रसकपूर का अतीत क्या था, यह जयराज को भी पता न था । वह जयपुर में आने के पूर्व कहा रहती थी, क्या करती थी, उसने नृत्य

एव गायन का प्रशिक्षण कहा लिया, यह सब वह नहीं जानता था। उसने कभी रसकपूर से उसके अतीत के बारे में पूछा भी नहीं था। उसे तो केवल इतना ही ज्ञात था कि वह उससे एक मंदिर में मिली थी और उसका मुरीला गायन सुनकर जयराज मुग्ध हो गया था और उसे गुणीजनखाने में ले आया था।

जब जयराज के निमंत्रण पर रसकपूर गुणीजनखाने में आयी थी तो वह मादे वस्त्रों में थी। उसके शरीर पर आम वेश्याओं की तरह के भडकीले वस्त्र नहीं थे। न ही उसकी चाल में चटक-मटक थी। उसके साफ-सुथरे चेहरे पर किसी प्रकार के वेश्याओं जैसे चिह्न भी नहीं थे। परन्तु यह मच था कि वह रामगज बाजार में कभी मुजरा किया करती थी।

रसकपूर की कला और शालीनता से जयराज बहुत प्रभावित हुआ था और उसकी भेंट महाराजा से कराने का उसने वायदा किया था। जयराज ने अपना वायदा वखूवी निभाया था और उसी की बदौलत रसकपूर आज राजमहल में थी।

अब रसकपूर के मुख में जयराज किसी प्रकार की भी बाधा उत्पन्न नहीं करना चाहता था। कुछ दिनों बाद उसने स्वयं ही प्रधानमंत्री से जाकर कहा, “वह रसकपूर का अतीत ज्ञात करने में असमर्थ है।” प्रधानमंत्री को जयराज के इस नकरात्मक उत्तर से गुस्सा तो बहुत आया, पर उन्होंने उसका कोई अहित नहीं किया।

परन्तु प्रधानमंत्री और सामन्त चादमिह शान्त नहीं बैठे रहे। वे रसकपूर को महाराजा से विलग करने के विभिन्न उपायों पर निरंतर विचार-विमर्श करने रहे। वे दोनों राजममाता के पास भी पहुंचे और उनमें महाराजा को समझाने के लिए निवेदन किया। राजमाता ने महाराजा के आचरण पर भारी खेद व्यक्त किया और दोनों प्रमुखों को बताया कि जब ने उन्होंने इस प्रकरण के बारे में सुना है तब से ही वे दुखी हैं। पर राजमाता ने अपने श्वनौते बेटे के दिल को दुखाने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी। दोनों को यह बहुर राजमाता ने विदा कर दिया कि वे उसकी

तरफ से महाराजा को जाकर कह सकते हैं कि उनके इस आचरण से राज-माता खुश नहीं हैं।

दोनों प्रमुख सीधे महाराजा के पास पहुँचे और राजमाता की खिन्नता को उन्होंने बड़ा-चढ़ाकर व्यक्त किया।

राजमाता का सदेश पाकर महाराजा उदास हो गये। परन्तु उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि इन दोनों प्रमुखों ने ही जाकर राजमाता को भड़काया होगा। महाराजा गम्भीर हो उठे।

उधर सामन्त चादर्सिंह ने अन्य सामन्तों को सदेश भेजकर जयपुर बुलाया और इस समस्या पर विचार करने का आग्रह किया। सामन्तों के सामने राज्य की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए चादर्सिंह ने कहा, “रसकपूर की वजह से ही महाराजा का मन राजकाज में नहीं लग रहा है और वे अधिकांश समय छविनिवास में व्यतीत करते हैं। इससे राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गयी है। अक्रुश और भय न रहने की वजह से अधिकारी स्वच्छद हो गये हैं। उधर गुप्तचरों ने सूचना दी है कि मराठे पुनः जयपुर पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं।

सामन्तों ने समस्या पर गम्भीर रूप से विचार किया और वही एक योजना पर विचार-विमर्श करके उसे अंतिम रूप दे दिया।

योजना के अनुसार जनता की असली-नकली फरियादों का एक पुलिदा लेकर प्रधानमंत्री महाराजा के पास पहुँचे। उन्होंने महाराजा से जनता के मामले निपटाये जाने के लिए एक आम दरबार आयोजित किये जाने की अनुमति माँगी। महाराजा ने इसकी अनुमति प्रधानमंत्री को दे दी।

शहर में आम दरबार के आयोजन का शीघ्र ही ऐलान कर दिया गया।

निश्चित दिवस पर, दिन के प्रथम पहर में दीवाने आम दरबार शुरू हुआ।

सामन्त, मंत्री, मुखिया, अधिकारी, फरियादी और नगर के आमत्रित प्रतिष्ठित जन अपना-अपना स्थान ग्रहण कर चुके थे।

चोबदार की आवाज गूँजी—

“होगियार ! सरदारान होगियार ! आम रियाया होशियार ! राज राजेन्द्र महाराजाधिराज मवाई जगतमिहजी बहादुर पधार रहे हैं ।”

महाराजा दरवार में रसकपूर के साथ पधारे ।

सभी सरदारों, मंत्रियों, अधिकारियों व अन्य उपस्थित जनों ने खड़े होकर महाराजा को कोर्निश की ओर फिर उनके बैठ जाने के बाद अपने-अपने स्थान पर सब बैठ गये ।

महाराजा से अनुमति प्राप्त कर प्रधानमंत्री ने सभा की कार्रवाई शुरू की ।

पहले कुछ फरियादी मामले उठाये गये । महाराजा ने बिना किसी जिरह-तर्क के सारे मामले चढ़ मिनटों में निपटा दिये । प्रधानमंत्री ने परम्परानुसार फरियादी से बार-बार जिरह करने का प्रयास किया, पर महाराजा ने जिरह में समय न खोकर वे सब मामले तुरन्त निपटा दिये ।

महाराजा जब उठने को उद्यत हुए, तभी सामन्त चादर्सिंह अपने स्थान पर खड़ा हो गया ।

“अन्नदाता ! राज राजेन्द्र ! मुझे सामन्तों की तरफ से अदब के साथ आपसे कुछ निवेदन करना है ।”

महाराजा ने चादर्सिंह को बोलने की अनुमति दे दी ।

“अन्नदाता ! मुझे सामन्तों ने आपके चरणों में कुछ अर्ज करने के लिए अधिकृत किया है, जिसे मुझे आज ही बया करना है ।”

महाराजा ने एक प्रश्नवाचक दृष्टि दूनी के सामन्त पर डाली ।

“महाराजाधिराज ! अपराध क्षमा हो ! हम सब जयपुर रियासत के सामन्तगण यह महसूस कर रहे हैं कि कुछ दिनों से राज्य की राजनीतिक स्थिति विगड़ती जा रही है । राज-काज सुचारु रूप से नहीं चल रहा है । छोटे-बड़े दीवान, [मुखिया और अधिकारी स्वच्छन्द हो गये हैं । राज्य के खजाने में निरंतर ह्रास हो रहा है । सिर्फ आन्तरिक ही नहीं, बाह्य स्थिति भी विगड़ती जा रही है । गुप्तचरों ने प्रधानमंत्री को सूचना दी है कि मराठे

पुन जयपुर पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। उधर उदयपुर के महाराजा भीमसिंह द्वारा अपनी परमसुन्दर राजकुमारी कृष्णाकुमारी को आपके साथ सगाई कर देने से जोधपुर में भारी प्रतिक्रिया हुई है। गुप्तचरो ने यह भी सूचना दी है कि जोधपुर के राजा मानसिंह ने उदयपुर की राजकुमारी पर अपना हक जताया है और कृष्णाकुमारी को प्राप्त करने के लिए वे तलवार तक उठाने को तैयार हैं। जोधपुर के राजा मानसिंह का कहना है कि राजकुमारी कृष्णाकुमारी की सगाई जयपुर के महाराजा से होने के पूर्व उसके भाई के साथ हुई थी। चूँकि दुर्भाग्यवश वह शादी के पूर्व ही स्वर्ग सिंघार गया इसलिए अब पहले जोधपुर का ही राजकुमारी कृष्णाकुमारी पर हक बनता है। जोधपुर द्वारा इन्कार किये जाने पर ही राजकुमारी का विवाह जयपुर के महाराजा से होना संभव है। गुप्तचरो की तो यहाँ तक सूचना है कि जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने जयपुर पर आक्रमण करने के लिए सेना को तैयार हो जाने का वक़ायदा आदेश भी दे दिया है। अन्नदाता ! इस प्रकार स्थिति बहुत गंभीर बन चुकी है। इन हालात में हम सब सामन्तो ने कुछ निश्चय किया है।”

“क्या निश्चय किया है ?” महाराजा ने आतुर होकर पूछा।

“हम सब सामन्त सोच-विचार कर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि राज्य की निरन्तर बिगड़ रही स्थिति का प्रमुख कारण रसकपूर ही है।”

“रसकपूर है ?” महाराजा ने साश्चर्य पूछा।

रसकपूर भी, जो सभा में मौजूद थी, अपना नाम आने पर चौंक पड़ी और सतर्क हो गयी।

“जी, महाराजा ! हमें बड़े दुख के साथ कहना पड़ रहा है कि जब से अन्नदाता पर रसकपूर का साया पड़ा है, तब से राज्य का विनाश होना शुरू हो गया है। यह एक अपशकुनी नारी है, जिसकी वजह से यह राज्य गर्त में ”

“रुक जाओ, चादसिंह !” महाराजा क्रोधित हो कर चिल्लाये। तुम लोगों को किसी राजमहिला पर आरोप लगाने का अधिकार नहीं है !”

दूनी के सामन्त ने दो बार महाराजा को कोर्निश करके अपना अदब व्यक्त किया और फिर उसी लहजे में बोला, “महाराजा ! अपराध क्षमा हो । पर सत्य तो सत्य ही रहेगा । जब से रसकपूर का सान्निध्य अन्नदाता को मिला है, अन्नदाता राज-काज भूल गये हैं । वे अपने कर्तव्यो एवं परम्पराओं को भी भुला बैठे हैं । हम निहायत अदब के साथ निवेदन करना चाहते हैं कि अब हम रसकपूर को राजमहल में एक दिन के लिए भी वर्दाश्त नहीं करेंगे । यह हमारा अंतिम फैसला है ।” कह कर चाद-सिंह बैठ गया ।

सभा में सन्नाटा छा गया ।

महाराजा ने एक नज़र वहाँ उपस्थित सभी सामंतों पर डाली । लगभग सभी सामन्त चादसिंह के कथन का मौन समर्थन करते हुए सिर झुकाए बैठे थे ।

इसके पूर्व कि महाराजा कुछ बोलते, रसकपूर अपने स्थान से उठकर खड़ी हो गई । सभा को सम्बोधित करते हुए वह बोली, “सम्माननीय सामन्तों ! मैंने दूनी के सामन्त की बात को बड़े गौर से सुना है । उन्होंने जो कुछ कहा है, वह उन्होंने जयपुर राज्य के हित की अन्तर्निहित भावना से प्रेरित होकर कहा है । मैं उनकी भावना का आदर करती हूँ । राज्य की आर्थिक और राजनीतिक दशा यदि विगड़ रही है तो यह निश्चित रूप से चिंता की बात है । मैं महाराजाधिराज से निवेदन करती हूँ कि वे इस सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक विचार करें । परन्तु आदरणीय सामन्तों ! आपके द्वारा मेरे ऊपर जो दोषारोपण किया गया है, वह उचित नहीं है ।”

“यह उचित है ।” प्रधानमन्त्री, जो अब तक चुपचाप बैठे हुए थे, खड़े हो गये और चादसिंह के कथन का उन्होंने समर्थन किया ।

“यह उचित नहीं है ।” रसकपूर ने पुनः गालीनता के साथ दोहराया ।

“यह बिल्कुल सही है ।” सामन्त चादसिंह और प्रधानमन्त्री ने एक साथ कहा ।

रसकपूर के एक तरफ सामन्त चादसिंह खड़ा था और दूसरी तरफ

प्रधानमन्त्री। दोनों की आखें गुस्से से लाल हो रही थी। रसकपूर विचलित नहीं हुई। उसने कहा, “मैं दोनों माननीय प्रमुखों से पूछना चाहती हूँ, क्या इस राजमहल में मेरे अलावा कोई महिला नहीं रहती?”

“रहती हैं। उन्हें राजमहल में रहने का अधिकार है। वे रानिया हैं, सम्माननीया एवं आदरणीया हैं। पर तुम नहीं। तुम एक अति साधारण महिला हो जिसे राजमहल की ड्यूटी चढ़ने का भी अधिकार नहीं है।” चादसिंह ने कहा।

“जन्म के समय कोई महिला न साधारण होती है और न ही असाधारण। ईश्वर तो हर प्राणी में एक जैसे प्राण डालता है। आप उसे रानी या राजकुमारी से सम्बोधित करते हैं जो राजप्रासाद में जन्म लेती है और उसे बादी से सम्बोधित करते हैं जो एक भोपड़ी में जन्म लेती है। मैं आप से पूछना चाहती हूँ कि क्या यह न्यायसंगत है? कौन बड़ा है और कौन छोटा है, इसका निर्धारण तो गुणों के आधार पर होना चाहिए। चन्द्रगुप्त एक प्रतापी राजा था, उसे क्या किसी रानी ने जन्म दिया था? वह एक दासी का पुत्र था। पन्ना धाय को क्या आप भूल गये? मैं पुनः आपसे कहना चाहूंगी कि व्यक्ति महान जन्म से नहीं, अपने गुणों से होता है।”

कुण क्षणों के लिए सभा में खामोशी छा गई। सभी सभासद इस ‘तर्क-युद्ध’ को गंभीरता के साथ सुन रहे थे।

“तुम भ्रम उत्पन्न करके अपने को राजप्रासाद में स्थापित करना चाहती हो। वल्कि इससे भी एक कदम आगे बढ़ गई हो। चन्द्रगुप्त का उदाहरण देकर तुम यह घोषणा करना चाहती हो कि तुम्हारी कोख से पैदा होने वाला बच्चा जयपुर राज्य का उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकता है।”

सामन्त चादसिंह की इस बात पर सभा में उपस्थित सभी सभासद चौंक पड़े।

“नहीं! हर्गिज नहीं। मेरी ऐसी कोई ख्वाहिश नहीं है। मैंने तो चन्द्रगुप्त का उदाहरण देकर कहा था कि उसे एक ऐसी महिला ने

जन्म दिया था जो एक अति साधारण महिला थी। वस्तुतः पृथ्वी पर मौजूद हर नारी में असीम शक्ति, विवेक और सहिष्णुता होती है। वह पुरुष से कहीं अधिक सजग और गुणवान होती है। स्वाभाव से नारी तो पुरुष से कहीं अधिक वफादार होती है। यह पुरुष की गलती है कि वह कभी-कभी अपने सामाजिक अधिकारों का दुरुपयोग कर अपनी बर्बर इच्छाओं की पूर्ति के लिए नारी की कमजोरी का फायदा उठाकर उसे पयभ्रष्ट कर देता है। नारी में गुणों का विकास उसके सही चिंतन से होता है, न कि भौतिक माधनों से। सिर्फ राजप्रासाद में जन्म लेने या प्रवेश पा लेने से ही नारी सर्वगुण-सम्पन्न नहीं हो जाती। मैं ऐसी अनेक रानियों के उदाहरण दे सकती हूँ जिनकी दुर्बुद्धि और छल-कपट से अनेक सल्तनतें तबाह हो गईं।”

“हमें नहीं सुनना ऐसी रानियों के उदाहरण। हम सृजन में विश्वास करते हैं, विनाश में नहीं। हम तो बस इतना जानते हैं कि महाराजा जगतसिंह की बगल में बैठी हुई यह रसकपूर एक गैरखानदानी महिला है, जिसे राजमहल में रहने का कोई अधिकार नहीं है।” चादसिंह ने कहा।

“किसे कहते हैं आप खानदानी और किसे कहते हैं गैरखानदानी? बंद कमरे में जब कोई जन्म लेता है तो वह जन्म के साथ ही खानदानी हो जाता है, और खुले आकाश में जब कोई पैदा होता है तो वह जन्म के साथ ही अकुलीन हो जाता है। अच्छा, मैं मान लेती हूँ मैं अकुलीन हूँ। पर क्या मैं सभा में मौजूद समस्त सामन्तों से पूछ सकती हूँ, क्या कभी आपने मेरी-जैसी किसी अकुलीन नारी का सानिध्य प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की? अभी उसी दिन आमेर में आयोजित जलसे में सामन्त चादसिंह ने दक्षिण की नाचने वाली को एक महन्त्र स्वर्ण मुद्राएँ देकर उसे दूनी में चलकर रहने का निमंत्रण दिया था। सुख भोगने के लिए, मन का चैन पाने के लिए, मुझ-जैसी गैरखानदानी महिलाओं की शरण ली जाती है, और सम्मान देने के लिए राजप्रासादों में जन्म लेना अनिवार्य माना जाता है। मैं तो कहती हूँ ऐसी हर नारी सम्मान और आदर की पात्र है जो पुरुष को सुख, सहयोग

और विवेक देती है ।”

रसकपूर के तर्कों से सामन्त चादसिंह विचलित हो गया । वेबस चादसिंह ने सामने खड़े प्रधानमन्त्री की ओर देखा ।

प्रधानमन्त्री ने कहा, “इन मूल्यों का निर्धारण हमारे पूर्वजों ने किया है । वे अविवेकी नहीं थे । वे जानते थे कि स्त्री पुरुष की कमजोरी होती है । अतः उन्होंने कुछ प्रतिबन्धात्मक नियम स्त्री के लिए बनाये हैं । राजा की वगल में सिर्फ रानी ही बैठ सकती है, पुरुष की कमजोरी का फायदा उठाने वाली साधारण नारी नहीं ।”

“स्त्री पुरुष की कमजोरी होती है, यह सिर्फ कमजोर पुरुष ही सोचता है । स्त्री पुरुष के लिए शक्ति होती है, यह पराक्रमी पुरुष कहता है । पुरुष ने हमेशा अपनी कमजोरी को नारी में आरोपित कर स्वयं को वेकसूर सिद्ध किया है । खुद का इद्रियो पर वश रहता नहीं, भोग-विलासिता के प्रति अपनी आसक्ति को पुरुष रोक नहीं पाता और इन सबके लिए नारी को दोषी बता देता है ।”

रसकपूर की बात से चादसिंह और प्रधानमन्त्री दोनों ही आवेश में आ गए और उससे एक के बाद एक तर्क करने लगे ।

चादसिंह—“नारी जन्म से ही दम्भी होती है ।”

रसकपूर—“नारी जन्म से स्नेहमयी होती है ।”

प्रधानमन्त्री—“नारी पुरुष को दिग्भ्रात कर देती है ।”

रसकपूर—“नारी पुरुष को दिशा देती है ।”

चादसिंह—“नारी अपने रूप के मायाजाल में पुरुष को फसाकर अस्तित्वहीन बना देती है ।”

रसकपूर—“नारी अपने रूप-सौन्दर्य से पुरुष को पुरुषत्व प्रदान करती है ।”

प्रधानमन्त्री—“नारी कुबुद्धि को जन्म देती है ।”

रसकपूर—“नारी विवेक की जननी है ।”

चादसिंह—“नारी समस्या है ।”

रसकपूर—“नारी समाधान है । ”

प्रधानमन्त्री—“नारी के कारण अनेक महल ढह गये । ”

रसकपूर—“नारी के कारण ताजमहल बन गये । ”

चादसिंह—“नारी उन्माद है । ”

रसकपूर—“नारी आल्लाह है । ”

प्रधानमन्त्री—“नारी जकडन है । ”

रसकपूर—“नारी हृदय की धडकन है । ”

चादसिंह—“नारी पहेली है । ”

रसकपूर—“नारी सहेली है । ”

प्रधानमन्त्री—“नारी बला है । ”

रसकपूर—“नारी कला है । ”

चादसिंह—“नारी विनाश है । ”

रसकपूर—“नारी प्रकाश है । ”

दोनों प्रमुख थककर निरुत्तर हो गये ।

परन्तु रसकपूर ने अपना तर्क जारी रखा, “आप लोगों का मुझ पर व्यक्त किया जा रहा आक्रोश निरर्थक है । मैं यहाँ राजप्रामाद में बसने के लिए नहीं आयी थी । मैं तो यहाँ महज नृत्य द्वारा आप लोगों का मनोरंजन करने आयी थी । गुणीजनखाना के मुखिया जयराज के अनुरोध पर ही मैंने यहाँ आकर अपनी कला का प्रदर्शन किया था । आप लोगों ने भी शरद्-उत्सव की रात मेरी कला की कद्र की थी, पर आप लोगों की कद्र क्षणिक थी । महाराजा विवेकी थे इसलिए इन्होंने मेरी कला की पूर्ण कद्र की ।

चादसिंह ने रसकपूर के इस कथन को वेडज्जती के रूप में लिया । वह अपना सतुलन खो बैठा । उसका स्वर गुस्से से भर गया, “तुम हमें अविवेकी मिट्ट कर रही हो । वस्तुतः तुम स्वयं अविवेकी हो । बल्कि तुम विवेक शून्य हो । तुम बेग्या हो । ”

“खामोश । ” हाराजा गरज उठे । उनकी आखों से अगारे वरमने लगे, “चादसिंह ।

तुमने रसकपूर को अपमानित कर के घोर अपराध किया है। तुम पर दो लाख रुपये का जुर्माना किया जाता है।”

सजा सुनाकर महाराजा रसकपूर की बाह पकड़कर सभा से उठकर चले गये।

कानाफूभी के साथ सभा विसर्जित हो गयी।

सभा में जो कुछ हुआ था, उससे रसकपूर खुश नहीं थी। हालांकि, सामन्त चादर्सिंह और प्रधानमंत्री के हर तर्क का उसने उत्तर दिया था, पर वे अपने पूर्वाग्रहों से इतने ग्रस्त थे कि उनका हृदय रसकपूर नहीं जीत पायी थी। चादर्सिंह पर दो लाख रुपये का जुर्माना किया जाना उसे और अधिक भडका सकता था। रसकपूर ने सारी परिस्थिति पर समुचित विचार करके अपने भावी जीवन की रूप-रेखा निश्चित कर ली।

रसकपूर ने महाराजा की राजकाज में दिलचस्पी उत्पन्न करने की कोशिश की। वह स्वयं भी राजकार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगी। उसने कई-एक मुखियाओं और अधिकारियों को अपने अनुकूल बना लिया।

चादर्सिंह का गुस्सा शान्त करने के उद्देश्य से रसकपूर ने महाराजा से उस पर किया गया जुर्माना माफ कर देने का आग्रह किया, पर महाराजा नहीं माने। भरी सभा में उनकी प्रेयसी को वेश्या कहे जाने की पीड़ा अब तक महाराजा को सता रही थी। महाराजा ने रसकपूर से साफ-साफ कह दिया कि वे जुर्माना माफ नहीं करेंगे और भविष्य में अगर किसी अन्य सामन्त ने ऐसा कहने की धृष्टता की तो उसकी जागीर जप्त कर लेंगे।

रसकपूर जानती थी, सामन्त चादर्सिंह क्रोधी स्वभाव का जिद्दी सामन्त है। वह अकेला भी नहीं है। उसको प्रधानमंत्री तथा कुछ अन्य प्रभावशाली सामन्तों का समर्थन भी प्राप्त है। वह कभी भी वकड़ खड़ा कर सकता है।

रसकपूर ने सामन्त चादसिंह से मिलने का निश्चय किया ।

रसकपूर ने अन्तःपुर की अपनी एक विश्वस्त सेविका को सामन्त चादसिंह को बुलाने भेजा, परन्तु चादसिंह ने आने से इन्कार कर दिया ।

रसकपूर ने इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाया और वह स्वयं चादसिंह से मिलने मोती डूंगरी किले में जा पहुँची । ज्योंही रसकपूर की वग्धी किले के द्वार पर आकर रुकी, द्वारपाल ने अदर जाकर चादसिंह को सूचित किया । चादसिंह ने झुझलाते हुए अपने अग्ररक्षक में रसकपूर को बाहरी बैठक में बैठाने के लिए कहा ।

चादसिंह ने रसकपूर से अकेले में मिलना उचित नहीं समझा । उसने तुरत घुडसवार भेजकर प्रधानमन्त्री को बुलवाया । पर घुडसवार वापस खाली हाथ लौट आया । प्रधानमन्त्री कुछ आवश्यक मन्त्रणा करने के मिलसिले में उस समय खण्डला गये हुए थे । विवश होकर चादसिंह को अकेले ही रसकपूर से मिलना पडा । उसने गुमास्ता भेजकर रसकपूर से पर्दा कर लेने को कहा ।

जब भरी मभा में उसने कभी पर्दा नहीं किया तो अब पर्दा करने की क्या तुक थी । फिर भी महज चादसिंह की बात रखने के लिए रसकपूर ने एक झीनी चुनरी पलको के नीचे तक बाध ली ।

चोवदार ने चादसिंह के आने की सूचना दी ।

चादसिंह द्रुतगति से अन्दर प्रविष्ट हुआ और बिना रसकपूर की ओर देखे घूम में बैठ गया । चादसिंह के इस गुम्सेल आचरण से रसकपूर मन-ही-मन हस पडी, पर उमने अपने चेहरे पर गम्भीरता बनाये रखी ।

“यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करूँ ?” रसकपूर ने कहा ।

चादसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप बैठा रहा ।

रसकपूर ने समय वर्वाद करना उचित नहीं समझा, उसने पूर्ण नम्रता के साथ पूछा, “यदि आदरणीय सामन्त चाहे तो जो कुछ मेरे कारण हुआ है, उसका खामियाजा भी स्वयं मैं ही भुगतूँ ? ”

“क्या मतलब ?” चादसिंह ने चौककर पूछा ।

“यदि आपकी शान मे गुस्ताखी न हो तो महाराजा ने सभा मे जो जुर्माना आप पर किया है, उसे मैं अदा कर दूँ ?”

“रसकपूर !” चादसिंह लगभग चीखता हुआ खड़ा हो गया। उसके दात बज उठे। “तुम अपनी औकात भूल बैठी हो। महाराजा तुम्हारे रूप-सौन्दर्य के जाल मे फस सकते हैं, दूनी का सामन्त नहीं। तुमने यहा आकर आज जो मेरा अपमान किया है, मैं उसका बदला लेकर रहूँगा।” यह कहकर चादसिंह तेजी से बाहर चला गया।

रसकपूर का डूंगरी किले मे आने का प्रयोजन निष्फल हो गया था। वह वापस चन्द्रमहल लौट आई।

रसकपूर मोती डूंगरी गयी तो थी चादसिंह का हृदय-परिवर्तन करने, पर हो उल्टा गया। रसकपूर की बात ने आग मे घी का काम कर दिया था।

इसके बाद तो चादसिंह विभिन्न उपायो से रसकपूर का अपमान करने की तरह-तरह की योजनाएँ बनाने लगा।

अपने जन्म-दिवस के उपलक्ष मे चादसिंह ने दूनी मे एक भारी जलसे का आयोजन किया। उसने सभी सामन्तो को आमन्त्रित किया। महाराजा जगतसिंह को भी निमन्त्रण भेजा पर साथ मे यह भी कहला भेजा कि वे चाहे तो सभी रानियो के सग दूनी पधारे, परन्तु रसकपूर को साथ मे न लायें।

इस प्रकार चादसिंह ने रसकपूर का अपमान करने की कोशिश तो की पर वह अपने उद्देश्य मे सफल नहीं हो सका, क्योंकि महाराजा ने चादसिंह को कहलवा भेजा—“जहा रसकपूर नहीं होगी, वहा मैं भी नहीं हूँगा।”

इससे चादसिंह का क्रोध और भडक उठा। अब तो वह रसकपूर के पूर्ण विनाश की योजना बनाने लगा।

मोती डूंगरी से लौट आने के बाद रसकपूर चादसिंह की तरफ से और अधिक सतर्कता बरतने लगी। उसने अपने विश्वस्त गुप्तचर चादसिंह के पीछे लगा दिये।

गुप्तचरो ने रमकपूर को सूचना दी कि चादसिंह ने विशिष्ट सामन्तो की एक गुप्त बैठक नाहरगढ़ किले में की है और वहां रसकपूर को महल में से निकाल देने पर विचार किया गया है। पूरी संभावना है कि आगामी वसन्तोत्सव के अवसर पर ये सामन्त कुछ गड़बड़ करेंगे।

इधर महाराजा ने वसन्तोत्सव के दिन रसकपूर को चन्द्रमहल में एक रानी के रूप में प्रवेश कराकर, उसे वाकायदा जयपुर की रानी घोषित किये जाने का कार्यक्रम बना रखा था। और इसके लिए उन्होंने अपने विश्वस्त सामन्तों का सहयोग भी प्राप्त कर लिया था। प्रधानमंत्री तथा सामन्त चादसिंह के विरोध की महाराजा ने जरा भी परवाह नहीं की थी।

गुप्तचरो की सूचना सही थी। सामन्त चादसिंह ने वसन्तोत्सव के दिन, एक रानी के रूप में रमकपूर के चन्द्रमहल में प्रवेश को रोकने के लिए, कई सामन्तों को तैयार कर लिया था।

चन्द्रमहल को सजाने का कार्य शुरू हो गया।

सामन्त चादसिंह ने कुछ सहयोगी सामन्तों के साथ महाराजा से भेंट की और उनसे इस विचार को त्याग देने का अनुरोध किया। राजमाता ने भी इस कार्य को उचित नहीं समझा और रमकपूर को एक रानी के रूप में प्रतिष्ठापित न करने के लिए महाराजा पर दबाव डाला। महाराजा ने यह कहकर कि वे उनकी बातों पर विचार करेंगे, सब को विदा कर दिया। परन्तु मन-ही-मन उन्होंने अपनी योजना को मूर्तरूप देने का पक्का निश्चय कर लिया था।

उधर रसकपूर ने भी तय कर लिया था कि वह राजमहल में रहे या न रहे परन्तु सामन्त चादसिंह के कहने पर महल कदापि नहीं छोड़ेगी। उसने सामन्त से लोहा लेने की ठान ली।

रसकपूर ने महाराजा में मिलकर वसन्तोत्सव की योजना बनायी।

जयपुर शहर के चौराहों, चौपालों और चौपड़ों पर ढिंढोरची द्वारा ऐलान कराया, “राजराजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतसिंह जी बहादुर

वसन्तोत्सव के दिन अपनी नयी रानी रसकपूर के साथ महल में शाही परम्परा के अनुसार विधिवत् प्रवेश करेंगे। राजा और रानी की सवारी का जुलूस जयगढ़ से चलकर मानिक चौक चौपड़ से होता हुआ चन्द्र-महल पहुँचेगा। आम आदमी से कहा जाता है कि वह जुलूस में अवश्य शामिल हो।”

रसकपूर के महल में विधिवत् प्रवेश किये जाने की सार्वजनिक घोषणा से चार्दसिंह के अनुयायी सामन्तो में खलबली मच गयी। उनकी गुप्त मन्त्रणाएँ पुनः शुरू हो गयीं।

पर सामन्तो का एक वर्ग ऐसा भी था जो महाराजा के इस कदम को गलत नहीं मानता था। उनका कहना था कि राजमहल में रसकपूर का विधिवत् प्रवेश हो जाने से सब कुछ नियमबद्ध हो जायेगा तथा सब राज-कुल की शान के अनुकूल हो जायेगा। लोग तब यह नहीं कह पायेंगे कि एक नाचने वाली ‘भक्तन’ महल में रह रही है।

चार्दसिंह के समर्थक सामन्तो का कहना था कि वसन्तोत्सव पर रसकपूर का राजमहल में विधिवत् प्रवेश हो जाने से वह नियमानुसार पटरानी बन जायेगी, और तब हर व्यक्ति के लिए उसके सामने सिर झुकाना, आदर प्रकट करना, अनिवार्य हो जायेगा। और यह एक राजपूत की शान के खिलाफ होगा कि वह एक ‘भक्तन’ के आगे सिर झुकाये।

सामन्तो के दोनों खेमों में रस्साकशी शुरू हो गयी। दोनों वर्ग विभिन्न सरदारों, जागीरदारों एवं प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने-अपने पक्ष में करने में जुट गये। प्रधानमंत्री स्पष्टतः चार्दसिंह के वर्ग के साथ थे। चार्दसिंह के इस गुट को राजमाता की सहानुभूति भी प्राप्त थी।

दूसरे खेमे का नेतृत्व एक वयोवृद्ध परन्तु कूटनीतिज्ञ ब्राह्मण पंडित शिवनारायण मिश्र कर रहा था। पंडित शिवनारायण मिश्र ने राजभक्त सामन्तो को संगठित कर ‘प्रवेश’ को सफल बनाने के लिए पैतरेवाजी शुरू कर दी। इसके लिए महाराजा से उसे सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त थीं।

पंडित शिवनारायण मिश्र ने चादमिह को कहला भेजा कि अगर वह रसकपूर के राजवंश में प्रवेश का महज इमलिए विरोध कर रहा है कि वह एक 'भक्तन' है, जिसके मा-बाप का पता नहीं तो वह रसकपूर को अपनी घेटी बनाने के लिए तैयार है, और ब्राह्मणत्व प्रदान करने के लिए 'यज्ञ' का आयोजन भी किया जा सकता है।

चादमिह ने इस प्रस्ताव को नामजूर कर दिया। उसने पंडित मिश्र को कहला भेजा कि वह इस 'प्रवेश' को हर सम्भव तरीके में रोकेगा।

अठारह वर्षीय अल्प वयस्क महाराजा, चादमिह और उसके समर्थकों द्वारा किये जा रहे विरोध को दवाने में भारी कठिनाई महसूस कर रहे थे। चादमिह की पेंतरवाजी का वे शिकार होते गये और इस वर्ग द्वारा उठे लित किये जा रहे जनमानस को वे अपने अनुकूल नहीं बना पाये। फिर भी वे निश्चय पर अडिग रहे।

गुप्तचरो द्वारा विभिन्न वर्गों एवं नगर की जनता की प्रतिकूल प्रतिक्रिया की सूचनाओं के बावजूद महाराजा जगन्मिह ने अपने निश्चय की क्रियान्विति के लिए तैयारी शुरू कर दी। वे रसकपूर को राजमहल में स्थापित करने के लिए छद्मप्रतिज्ञ दिखायी दे रहे थे।

निश्चित दिवस पर, कड़ी सुरक्षा के अन्दर, जयगढ़ से रसकपूर के साथ महाराजा जगन्मिह की सवारी निकली।

सामन्तों के एक वर्ग के विरोध के बावजूद जुलूम पूरी भव्यता के साथ निकला। जुलूम में सबसे आगे डोल और त्रिगुल बजाने वाले चल रहे थे। उनके पीछे, रंग-विरंग परिधानों में भक्तन नृत्य कर रही थी। घूमर नृत्य के समय नृत्यांगनाओं की लम्बी केशवर्तिकाएँ हवा में झूल जाती थी। उनके उत्तरीय वाग-वार हवा में लहरा जाते थे, जिन्हें वे तेजी से पकड़तीं और अपनी कमर में खोंस लेती। नृत्यांगनाओं के पीछे, वाली बैलगाड़ी पर नगाटा बज रहा था। नगाटे के पीछे, गहनाईवाक थे और उनके बाद एक महान् पैदल सैनिक चल रहे थे। इनके पीछे राजचिह्न लिये हुए पांच पहरी चल रहे थे। राजचिह्न के पीछे, घुड़मवार सेना का एक दस्ता

था। घुडसवार सेना के पीछे एक विशाल रथ पर रसकपूर के परिधान, आभूषण, श्रृ गार-सामग्री (जो सामान्यतः दहेज में आती है) रखी हुई थी। रथ के पीछे दस सामन्त हाथों में नगी तलवारे लिये हाथियों पर सवार थे। इनके पीछे कलात्मक ढंग से सजाये गये रथ पर महाराजा जगतसिंह और रसकपूर विराज रहे थे। महाराजा जगतसिंह ने नीली अचकन पर गुलाबी साफा बाधा हुआ था। रसकपूर ने गुलाबी वस्त्र पहने हुए थे जिन पर नीला उत्तरीय हवा के झोको से बार-बार फड़फड़ा जाता था।

महाराजा के रथ के पीछे पन्द्रह हाथी, बीस ऊट तथा अन्त में पुनः घुडसवार सेना की एक टुकड़ी थी।

विरोध और समर्थन के तनावपूर्ण वातावरण में निकले इस जुलूस को देखने के लिए राजमार्ग के दोनों ओर काफी सख्या में लोग खड़े थे। दर्शकों के चेहरो पर कौतूहल और रसकपूर को देखने की उत्कण्ठा के मिश्रित भाव थे।

जोरावरसिंह द्वार से होता हुआ जुलूस जब चादी की टकसाल के पास पहुँचा, एक गुप्तचर ने महाराजा को इशारा कर कुछ कहना चाहा। महाराजा ने रथ रुकवाकर गुप्तचर की सूचना सुनी। सूचना सुनकर वे किञ्चित् चिंतित हो उठे। गुप्तचर की सूचना से अब तक मुस्करा कर जनता का अभिवादन स्वीकार कर रही रसकपूर भी गंभीर हो गयी। महाराजा ने अगरक्षको एवं सेना के प्रधान को बुलाकर कुछ निर्देश दिये।

जैसी कि गुप्तचर ने महाराजा को सूचना दी थी, सिटी ड्योढी दरवाजे पर सामन्त चार्दसिंह का दल तलवारे ताने खड़ा था।

जुलूस सिटी ड्योढी पर आकर रुक गया। ढोल बजने बन्द हो गये। नृत्य रुक गया। एक गहरी निस्तब्धता जुलूस के प्रारम्भ से अन्त तक छा गयी।

एक सामन्त महाराजा के रथ के पास आया। उसने तलवार झुकाकर कोर्निश की ओर फिर अपने दल का सदेश सुनाया, “अन्नदाता ! राज

राजेन्द्र ॥ हम सब सामन्त आपका पूरा आदर करते हैं और करते रहेंगे । हम आपके प्रति वफादार हैं, और रहेंगे । पर अन्नदाता । हम रसकपूर को एक रानी का सम्मान देने में असमर्थ हैं । हम रसकपूर की सवारी को राजमहल में प्रविष्ट नहीं होने देंगे । हम अपना खून बहा देंगे पर अपने निश्चय से नहीं डिगेंगे ।” सामन्त विना महाराजा का उत्तर सुने, अपनी बात कहकर, अपने खेमे में लौट गया ।

महाराजा जगतसिंह गुस्से से भर उठे । उन्होंने तत्काल सेना-प्रधान को बुलाया ।

सेना-प्रधान ने आकर महाराजा को बताया कि सामन्तों का सामना करने के लिए सेना तैयार खड़ी है, सिर्फ महाराजा के आदेश का इंतजार है ।

महाराजा का हाथ तलवार की मूठ-पर जा चुका था । वे उठकर खड़े होने वाले थे कि रसकपूर ने उनकी बाह पकड़कर रोक लिया । “राजन् ! क्या फूलों से लदा सुवासित हुआ यह राजमार्ग अब राजपूतों के खून से सनेगा ? क्या एक स्त्री की खातिर ऐसे पराक्रमी, वीर योद्धाओं को जिन्हें दुश्मनों के बलमर्दन के लिए तैयार किया गया है, आपस में ही लड़-मर जाना चाहिए ? मैं राजमार्ग पर उनके खून का एक भी कतरा गिरने के पूर्व अपना प्राणान्त कर देना उचित समझूँगी ।”

यह सुनकर महाराजा के माथे पर बल पड़ गये, उन्होंने पूछा, “फिर ?”
“लौट चलिए ।”

प्रतिष्ठा का सवाल था । महाराजा ने रसकपूर के प्रस्ताव को ना-मजूर कर दिया । उन्होंने मन्त्रणा के लिए पंडित शिवनारायण मिश्र को बुलवाया ।

पंडित शिवनारायण मिश्र ने महाराज को एक युक्ति सुझायी । इस युक्ति के अनुसार राजभक्त सामन्तों को चादसिंह के सामन्तों के साथ तर्क-वितर्क में उलझा दिया गया । दोनों पक्ष एक-दूसरे को समझाने में लग गये । यह प्रक्रिया चल ही रही थी कि महाराजा का रथ गोविंद-देवजी के मंदिर की तरफ वाले पिछवाड़े द्वार की ओर मोड़ दिया गया

और वही से रसकपूर का राजमहल में प्रवेश करा दिया गया ।

रसकपूर के विधिवत् प्रवेश हो जाने के बाद राजमहल के शिखर पर फहरा रहे राजध्वज के नीचे रसकपूर के 'रानी सूचक' ध्वज को फहरा दिया गया और विगुल बजा दिया गया ।

ध्वज को देखकर चादर्सिंह-वर्ग के सामन्त हक्के-बक्के रह गये और पंडित शिवनारायण मिश्र को 'धूर्त, कपटी, नीच' कहते हुए, तलवारों को म्यानो में रखते हुए लौट गये ।

चादर्सिंह के व्यवहार से महाराजा बहुत क्रोधित थे । वे चादर्सिंह को कड़ा सबक सिखाना चाहते थे । परन्तु रसकपूर और महाराजा के अन्य राजनीतिक सलाहकारों ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया । अभी चादर्सिंह को छेड़ने का समय नहीं था । जयपुर रियासत पर बाहरी आक्रमणों के खतरे के बादल मंडरा रहे थे । महाराजा जगतसिंह गुस्सा पीकर रह गये । लेकिन उन्होंने प्रधानमंत्री को तत्काल बर्खास्त कर दिया और उनके स्थान पर पंडित शिवनारायण मिश्र को प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया ।

पंडित शिवनारायण मिश्र ने प्रधानमंत्री का पद सम्भालने के साथ ही महाराजा को 'रसकपूर प्रकरण' सदैव के लिए समाप्त कर देने की राय दी । रसकपूर का राजमहल में विधिवत् प्रवेश तो हो ही चुका था परन्तु उसे स्थायी करने के लिये कुछ कदम उठाये जाने अभी शेष थे । इसके लिए पंडित शिवनारायण मिश्र ने महाराजा को रसकपूर के नाम का सिक्का चलाने की राय दी । महाराजा ने इस राय पर तुरन्त अमल किया और टकसाल के मुखिया को बुलाकर रसकपूर के नाम का सिक्का ढालने का आदेश दे दिया ।

राजमहल में प्रवेश पा लेने के बाद रसकपूर बहुत सजीदगी से सारे काम करने लगी । उसने राजकर्मचारियों को अपने पक्ष में करना और पंडित शिवनारायण मिश्र को राजकाज में सहयोग देना शुरू कर दिया ।

थोड़े ही समय में वह राजकर्मचारियों और प्रशासन पर हावी हो गयी ।

महाराजा की अनिच्छा की वजह से राजकाज के प्रति हो रही उपेक्षा को रसकपूर की सक्रियता ने काफी हद तक कम कर दिया और कुछ समय से प्रशासन में आ गयी उच्छृंखलता भी अब धीरे-धीरे कम होने लगी ।

रसकपूर ने स्वयं अपनी और राजमहल में रहने वाले लगभग सभी व्यक्तियों की दिनचर्या को नियमित कर दिया ।

प्रातः काल, भोर में, राजमहल भजनो की सुरीली आवाज से गूँज उठता । रसकपूर स्वयं तानपूरा लेकर भजन गाती । उसकी आवाज सुनकर महाराजा जगत्सिंह जाग जाते और करवटे बदलकर रात की खुमारी को दूर भगाने का प्रयास करते ।

मारा राजमहल नियमित हो गया था, पर महाराजा का प्रमाद ज्यो-का-त्यो बना हुआ था ।

हर सुबह एक घंटे के पूजन के बाद रसकपूर अपने हाथ से चरणामृत लाकर अलसा रहे महाराजा को पिलाती और उन्हें पीठ से सहारा देकर पलंग से उठा देती । मोतियों की मालाओं की छन्-छन् के बीच महाराजा रसकपूर की बाह पकड़ लेते और कहते, “आज तो तुम्हारी आवाज और भी मधुर लग रही थी ।” महाराजा तब अपने ओठ उसकी गर्दन पर जाकर टिका देते और कहते, “कितना रस छिपा हुआ है यहाँ ।”

रसकपूर महाराजा को हल्के से झिड़क देती, “आपका तो खुमार उतरता ही नहीं । सुबह-सुबह भगवान का नाम लिया कीजिये । इससे हम दोनों का और जयपुर रियासत की जनता का भी लाभ होगा ।”

“ले लूँगा । भगवान का नाम भी ले लूँगा । पहले इस भगवान की अराधना तो पूरी हो जाये ।” महाराजा रसकपूर को आलिंगनबद्ध कर लेते । वह कसमसाकर रह जाती ।

सदा की भाँति प्रातः जब रसकपूर भजनोपरांत चरणामृत लेकर महाराजा के यहाँ जा रही थी तो द्वार के बाहर गुप्तचर विभाग के

मुखिया को उसने खड़े देखा । अवश्य कोई खास बात होगी । रसकपूर किसी भावी शका से ग्रस्त हो गयी ।

“आप सुबह-सुबह यहा ?” रसकपूर ने गुप्तचर विभाग के मुखिया से पूछा ।

मुखिया ने रसकपूर को अदब जताया और बताया कि एक बहुत ही गभीर समस्या आ पडी है । रात मे उन्हे सूचना मिली है कि जोधपुर की विशाल सेना जयपुर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से कूच कर चुकी है ।

वात वास्तव मे बहुत गम्भीर थी । तुरन्त रसकपूर गुप्तचरविभाग के मुखिया को अपने साथ अदर ले गयी ।

सदैव की तरह आज भी महाराजा ने पायल की स्न-ड्रुन की आवाज सुनकर उचककर रसकपूर का अभिवादन किया । परन्तु रसकपूर के पीछे गुप्तचर विभाग के मुखिया को देखकर क्षोभ का एक हल्का-सा भाव उनके चेहरे पर तैर गया ।

“तुम कैसे अदर आ गये ?”

“इन्हे मैं अपने साथ लायी हू ।”

“क्यो प्रिये ? ऐसा क्यो ? आज ‘प्रथम-दर्शन’ मे यह व्यवधान क्यो ?”

“इन्हे आपको एक बहुत जरूरी सूचना देनी है ।”

“ऐसी कौन-सी जरूरी सूचना है, जिसे हम दिन मे नही सुन सकते थे ?”

मुखिया ने महाराजा के प्रति अदब जताया और कहा, “अन्नदाता । रात मे जोधपुर के गुप्तचरो की सूचना आयी है कि जोधपुर की विशाल सेना जयपुर पर अक्रमण करने के लिए कूच कर चुकी है । मैंने हुजूर को रात मे जगाना उचित नही समझा ।”

यह सुनकर महाराजा गभीर हो गये ।

गुप्तचर विभाग के मुखिया ने प्राप्त सारी सूचनाए तब विस्तार से महाराजा को सुनायी ।

जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने, उदयपुर की अद्वितीय सौन्दर्य के

लिए विद्यात राजकुमारी कृष्णाकुमारी ८२, यह कहकर अपना हक जताया था कि राजकुमारी कृष्णाकुमारी की पहली सगाई उसके भाई के साथ हुई थी। अब यदि शादी के पूर्व उसका भाई स्वर्गवासी हो गया है तो राजकुमारी का रिश्ता उसके साथ किया जाना चाहिए। परन्तु उदयपुर के महाराजा को यह रिश्ता स्पष्टतः नामजूर था। वह अपनी बेटी को जयपुर के युवा महाराजा जगतसिंह के साथ ही व्याहना चाहते थे।

जोधपुर के महाराजा को जयपुर पर आक्रमण करने के लिए उनकी अपनी रियामत के ही एक प्रभावशाली सामन्त पोंकरण के ठाकुर सवाई-सिंह ने उकसाया था। पोंकरण का ठाकुर अपनी बेटी का ब्याह जयपुर के महाराजा जगतसिंह से 'डोला' पद्धति से करना चाहता था, यह जोधपुर के महाराजा मानसिंह को स्वीकार नहीं था। जोधपुर के महाराजा का कहना था कि राठौरो की बेटी जयपुर तभी जा सकेगी जब जयपुर-नरेश स्वयं जोधपुर आकर उसे ब्याह कर ले जायेंगे। चूँकि ऐसा नहीं हो रहा था, अतः जोधपुर के महाराजा ने सवाईसिंह को अपनी बेटी की शादी के लिए स्वीकृति नहीं दी थी। परन्तु पोंकरण का ठाकुर सवाई-सिंह अपनी बेटी को जयपुर-नरेश से ब्याहने के लिए अत्याधिक लालायित था। और जैसे भी हो वह अपनी बेटी को जयपुर के राजमहल में प्रवेश कराकर अपना रिश्ता जयपुर में जोड़ना चाहता था। उसने जोधपुर के महाराजा के विरुद्ध पड़्यत्र रचना शुरू कर दिया। उसने एक ओर तो धोकलसिंह को गुमराह कर जोधपुर का महाराजा बनने के लिए विद्रोह करने को उकसाया और दूसरी ओर महाराजा मानसिंह का मानसिक मतुलन बिगाड़ने के उद्देश्य से जोधपुर में यह प्रचार शुरू कर दिया कि जोधपुर महाराजा की पौरुषहीनता के कारण उदयपुर की राजकुमारी जोधपुर आने के बजाय जयपुर जा रही है।

पोंकरण का ठाकुर अपनी चाल में सफल हो गया था। और जोधपुर का महाराजा अपने पौरुष का प्रदर्शन करने लिए सेना लेकर

जयपुर की ओर चल पड़ा था ।

गुप्तचर विभाग के मुखिया की सूचनाएँ गभीर और चिंताजनक थी । महाराजा ने हाथ से इशारा कर मुखिया को जाने के लिए कहा । मुखिया चला गया । महाराजा ने रसकपूर से चरणामृत लेते हुए कहा, “यह सही मौका है, चार्दासिंह से बदला का । मैं उसे जोधपुर की सेना से युद्ध के लिए भेज देता हूँ ।”

“और यदि चार्दासिंह ने उल्टा आपसे ही बदला ले लिया तो ?”

“वह कैसे ?”

“जोधपुर के महाराजा से हाथ मिलाकर । युद्ध के लिए किसी बागी सरदार को भेजना भयकर भूल सिद्ध हो सकती है ।”

“फिर किसे भेजा जाए ?” महाराजा सोचने लगे ।

“किसे भेजा जाय ? क्या स्वयं आप युद्ध में नहीं जायेंगे ?”

“यह तुम कह रही हो प्रिये ? तुम मुझे युद्ध में भेजना चाहती हो ? क्या तुम मुझसे उकता गई हो ? मुझे जानबूझकर खतरे में धकेल रही हो ? क्या तुम एकान्त चाहती हो ?”

रसकपूर ने महाराजा का हाथ चूम लिया, “नहीं, राजन् ! मैं एक पल भी आपको देखे बिना जी पाऊँगी, यह सदिग्ध है । क्षणभर का भी आपका विच्छेद मुझे असीम वेदना देगा । पर राजन्, यह तो और भी अधिक कष्टदायक होगा जब हमारी सेना जोधपुर के हाथों परास्त हो जायेगी और मुझे प्रातः काल किसी खिन्न चेहरे को चरणामृत देना पड़ेगा ।”

“तुम ऐसा क्यों सोचती हो, प्रिये ! हमारी सेना परास्त नहीं होगी । हमारे पास अनेक युद्ध-प्रवीण योद्धा हैं । तुम उनके पराक्रम से अभी परीक्षित नहीं हो । ये योद्धा हारकर नहीं बल्कि जीतकर ही लौटेंगे । हमें ईश्वर ने जो सुख-उल्लास के दिन दिखाये हैं, उसमें विघ्न नहीं पड़ेगा । तुम्हारी ये बाहे सदैव मेरे गले का हार बनकर रहेगी ।” कहकर महाराजा ने रसकपूर को खींचकर आर्तिगनबद्ध कर लिया ।

सिर पर युद्ध के बादल मंडरा रहे थे, और महाराजा अभी तक प्यार के नशे में डूबे हुए थे। रमकपूर को यह विलकुल अच्छा नहीं लगा। उसने आंतरिक तिरस्कार की भावना से प्रेरित होकर अपने को महाराजा के बाहुपाश में मुक्त कर लिया।

महाराजा जगतसिंह अवाक् हो रमकपूर को देखते रहे।

“राजन् ! यह समय प्रेमालाप का नहीं है। यह युद्ध का समय है। अब आप भूल जाइये कि कोई रमकपूर इस महल में रहती है। उठिये और जाकर युद्ध की तैयारियाँ कीजिये।”

“यह कैसे नभव है, प्रिये ! मैं रमकपूर का विस्मरण कैसे कर सकता हूँ। मेरे लिए यह एकदम असंभव है। रमकपूर मेरे रोम-रोम में समा चुकी है। फिर यह युद्ध हो क्यों रहा है ? सिर्फ एक राजकुमारी के लिए ही न ? मैं राजकुमारी कृष्णाकुमारी पर अपना हक छोड़ दूंगा। युद्ध होगा ही नहीं। भला तुम्हें पाने के बाद अब इस महल में किसी दूसरी स्त्री के आने की जरूरत ही क्या रह गई है ?”

“क्या कहा ? तुम कृष्णाकुमारी को छोड़ दोगे ? अपने व्याह के नित नये सपने देखने वाली उस बेकनूर वाला का दिल तोड़ दोगे ? तुम उसे रत्ना दोगे ? उस ज़ोमलागी की एक प्राँड दानव के लिए बलि चढ़ा दोगे ? मुझे मालूम नहीं था, तुम इतने निष्कुर और स्वार्थी हो !”

“पर रमकपूर ! यह सब तो मैं तुम्हारे लिए ही कर रहा हूँ। तुम्हारे नानिब्य मेरे मने वही तो नीखा है। इस दुनिया में प्रेम ही सब कुछ है। और युद्ध प्रेम का शत्रु है। मैं युद्ध नहीं करूँगा।”

“युद्ध नहीं करोगे ? क्या तुम उस अनुपम सुन्दर राजकुमारी को खो दोगे ? क्या तुम अब नानन्दय के उपामक नहीं रहे ? राजन् ! अब मुझे तुम पर विश्वास नहीं रहा। जो आज युद्ध में भय खाकर अपनी मंगेतर को छोड़ सकता है, वह एक दिन मुझे भी छोड़ दे सकता है। अमल में तुम युद्ध में भयगन्त हो। प्रेम तो एक बहाना मात्र है।”

“नहीं ! विनुन नहीं ! मैं युद्ध में नहीं डरता हूँ। पर मैं उस युद्ध की

अनिवार्यता स्वीकार नहीं करता हूँ। यह युद्ध निरर्थक है। मेरी पूर्णता कृष्णाकुमारी को पाने में नहीं है ”

“तब क्या रसकपूर को भोगने में है ?” रसकपूर महाराजा के दुर्बल हृदय से दुखी होकर आवेश में आ गयी, “राजन् ! छोड़ दो मुझे ! मैं तो तुम्हारे शौर्य पर आसक्त होकर यहाँ आयी थी। मैं कछवाहा राजपूत के पराक्रम पर मुग्ध हुई थी। राजमहल में सुख भोगने के लिए मैं नहीं आयी। मैं तो उस राजपूती पताका को और ऊँचा फहराने आयी थी, जिसे तुम्हारे पूर्वजों ने अपना खून बहाकर अभी तक फहराये रखा है। मुझे क्या मालूम था, इतना बड़ा महाराजा ! इतना विवेकी ! इतना कुशल राजनीतिज्ञ ! एक साधारण अकुलीन नारी को पाकर अपने कर्तव्यों को भूलकर तुच्छता को प्राप्त हो जायेगा ! कहा गया वह तुम्हारे पूर्वजों का विरासत में तुम्हें मिला हुआ शौर्य ? कहा है वह खानदानी राजपूती स्वाभिमान ? जोधपुर के महाराजा की दुःचेष्टा की खबर सुनकर तुम्हारा खून क्यों नहीं खौल उठा ? तुम्हारी भुजाएँ क्यों नहीं फड़क उठी ? अभी तक तुम्हारा हाथ म्यान पर क्यों नहीं चला गया ? मैं कहती हूँ, तुम्हारा शौर्य लुप्त हो चुका है ! तुम्हारी बाहों में अब तलवार उठाने का बल नहीं रहा ! तुम एक निर्बल पुरुष हो ! तुम कायर और पौरुषहीन हो ! तुम ”

“रसकपूर !” महाराजा चीख उठे।

वे तेजी से बाहर निकल आये।

“अरे ! कोई है ?” आवेश से महाराजा का सारा शरीर कांप रहा था।

चार सेवक उपस्थित हो गये।

“प्रधानमंत्री तथा सेनापति को तुरन्त बुलाओ, कहना हम उनसे विशेष सत्रण करना चाहते हैं।”

महाराजा ने दीवाने खाम में प्रधानमंत्री, सेनापति तथा जयपुर रिया-

सत के समस्त सामन्त-सरदारों को भी बुला लिया और उन्हें सारी स्थिति से अवगत कराया। सभी ने जोधपुर के महाराजा के इस कृत्य की घोर भर्त्सना की। उपस्थित सरदारों ने, जिनमें दूनी का सामन्त चार्दसिंह भी सम्मिलित था, महाराजा के प्रति पूर्ण वफादारी व्यक्त की और प्रण किया कि उदयपुर की राजकुमारी को जयपुर लाकर ही वे तलवारों को म्यान में डालेंगे।

सरदारों को अपने-अपने ठिकाने में जाकर युद्ध की तैयारी करने का आदेश देकर महाराजा ने उन्हें रवाना किया और स्वयं प्रधानमन्त्री तथा सेना-प्रमुखों के साथ विचार-विमर्श में जुट गये।

गुप्तचरों की सूचना थी कि जोधपुर के पास राठीरों की विशाल सेना है। सेना सुसंगठित और महाराजा के प्रति पूर्ण आस्थावान है। सख्या की दृष्टि से भी जोधपुर की सेना जयपुर की सेना से कहीं अधिक है। जोधपुर की सेना में कई नामी सिद्धहस्त तोपची भी शामिल हैं।

गुप्तचरों की इन सूचनाओं से प्रधानमन्त्री को जयपुर की सेना की सफलता सदिग्ध नजर आने लगी।

सेना की सख्या किलो की सुरक्षा के लिए तैनात डीलो को उतार कर बढ़ायी जा सकती थी। महाराजा के आधीन तैतीस किले थे जिनमें रण-धम्भीर का प्रसिद्ध किला भी सम्मिलित था। किलो में लगभग छ हजार डील थे। महाराजा चार हजार डीलो (किले की सुरक्षा के लिए विशेषरूप से दक्ष सैनिक) को नीचे उतारना चाहते थे, पर रसकपूर ने उन्हें ऐसा न करने की सलाह दी। जयपुर को विल्कुल असुरक्षित छोड़ दिया जाना खतरे से खाली न था। मौके का फायदा उठाकर पूर्व की तरफ से जयपुर पर आक्रमण होने का पूरा खतरा था। यह बात कालान्तर में सही सिद्ध हुई। जब जयपुर-जोधपुर युद्ध चल रहा था, कुचामन का ठाकुर जोधपुर की एक सेना-टुकड़ी के साथ जयपुर पर चढ़ आया था। उस वक्त रसकपूर द्वारा रोके गये डीलो ने ही बड़ी बहादुरी के साथ जयपुर की रक्षा की थी।

पिंडारी के नेतृत्व में मराठों की सेना जयपुर की सेना से आ मिली।

युद्ध की पूरी तैयारी के बाद युद्धघोष का बिगुल बजा दिया गया। अमेर महल में सिलादेवी की आराधना के बाद महाराजा जगतसिंह ने स्वयं घोड़े की रास थामी और माँ देवी की 'जय-जयकार' की गूँज के साथ घोड़े को एड लगा दी। हिनहिनाकर घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

विभिन्न शस्त्रों से लैस कछवाहा राजपूतों की सेना राजमार्ग से जयपुर शहर को चीरती हुई सागानेरी द्वार से निकलकर जोधपुर के लिए रवाना हो गयी। घोड़ों की टापों से सारा शहर गूँज उठा। धूल के गुब्बारे से शहर के आकाश में अधेरा छा गया।

माओं ने अपने बेटों, बहिनो ने अपने भाईयों और वीरागनाओं ने अपने पतियों की जीत के लिए मगल-गीत गाये।

जयपुर की ओर चली जा रही जोधपुर की सेना को जयपुर की सेना ने गिंगोली में रोक दिया। महाराजा जगतसिंह ने जोधपुर के महाराजा मानसिंह को ललकारा। भयकर युद्ध छिड़ गया। राठौरो और कछवाहा राजपूतों की तलवारें एक-दूसरे के खून की प्यासी हो उठी। देखते ही देखते लाशों का अम्बार लग गया। सारा मैदान खून से सन गया।

अमीरखा पिंडारी की अध्यक्षता में मराठा-सेना का साथ जयपुर की सेना के लिए वरदान साबित हुआ। राजकुमारी कृष्णाकुमारी को विजित करने आयी जोधपुर की सेना बुरी तरह पराजित होकर भाग खड़ी हुई।

विजय की खुशी में जयपुर की सेना के सैनिक झूम उठे।

युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय रसकपूर का कहा हुआ वाक्य एका-एक महाराजा जगतसिंह को स्मरण हो आया। रसकपूर ने कहा था— 'दुश्मन को कभी अधमरा मत छोड़ना। दुश्मन की शक्ति इस तरह क्षीण कर देना कि वह दुबारा युद्ध का नाम ही न ले। दुश्मन को अधमरा छोड़ देने की गलती से अनेक सल्तनतों को बाद में भारी पछतावा उठाना पड़ा है।' महाराजा ने जोधपुर की भागती सेना का पीछा किया और जाकर

सीधा जोधपुर शहर को घेर लिया ।

जयपुर की सेना द्वारा जोधपुर शहर का घेराव किये जाने से महाराजा मानसिंह घबरा उठा । उसने एक कुटिल चाल चली । तीस हजार रुपये से अमीरखा पिंडारी को खरीदकर जोधपुर के महाराजा ने उसे अपने पक्ष में कर लिया । अमीरखा पिंडारी की सेना घेरा छोड़कर विलग हो गयी ।

अब जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने जयपुर की सेना का घेरा तोड़ने का दूसरा ही उपाय किया । उसने अपने कुछ विष्वस्त सामन्तों को अमीरखा पिंडारी की सेना के साथ जयपुर पर जाकर हमला करने के लिए भेज दिया । रास्ते में कुचामन का योद्धा सामन्त शिवनार्थसिंह भी इनके साथ मिल गया ।

रात के समय जयपुर राज्य की सीमा का इस सेना ने अतिक्रमण किया । परन्तु रसकपूर की राय पर किलो में छोटे गये डीलो ने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन करके इन्हें जयपुर शहर में घुसने से रोके रखा ।

रसकपूर ने जयपुर पर आक्रमण होने की सूचना तुरन्त महाराजा जगतसिंह को जोधपुर भिजवा दी । विवश होकर महाराजा को जोधपुर शहर का घेरा छोड़कर जयपुर के लिए रवाना होना पड़ गया ।

महाराजा जगतसिंह के जयपुर लौटने की खबर सुनते ही जोधपुर से आयी सेना की टुकड़ी भाग खड़ी हुई ।

विजयी सेना का जयपुर लौटने पर हार्दिक अभिनन्दन हुआ । महलों के प्राचीर से त्रिगुल वजाये गये । घर लौट आये योद्धाओं की माओ-बहिनों ने आरती उतारी ।

पूरे एक सप्ताह तक जीत की खुशी मनायी गयी । जशन किये गये । महफिलों का आयोजन किया गया ।

जीत की खुशी में रसकपूर फूली नहीं समा रही थी । वह राजराजेश्वर मन्दिर से बाहर आ गयी, जिसमें महाराजा जगतसिंह ने युद्ध पर जाने के बाद उनकी मंगल-कामना के लिये उसने स्थायी निवास बना लिया

था। महाराजा के लौट आने की खबर सुनते ही वह 'जय-जयकार' करती हुए त्रिपोलिया पर आकर खड़ी हो गयी। महाराजा जगतसिंह ने घोड़े से उतरकर सबसे पहले रसकपूर के पास जाकर उसका अभिवादन स्वीकार कर कुशल-क्षेम पूछा। नीली आखों से बहते दो आसुओं ने बड़ी-बड़ी पलकों के कोर गीले करते हुए विरह की वेदना व्यक्त की। महाराजा ने देखा, इन छ महीनों में रसकपूर ने अपनी 'श्री' को काफी हद तक खो दिया है। वे उभरे हुए गाल जिनका उन्होंने जाते समय प्यार से स्पर्श किया था, भीतर घस गये हैं। वे उभरी हुई आखों की शखाकार बड़ी-बड़ी पुतलिया जिन्होंने उसे जयगढ़ किले से हसते हुए विदा किया था, घसकर निस्तेज पड़ चुकी हैं। गुलाब-सी पखुडियानुमा पतले-पतले ओठ मुरझा कर हतप्रभ हो गये हैं, उन पर सिलवटें पड़ गयी हैं। रसकपूर के सौन्दर्य-ह्रास को देखकर महाराजा अत्यन्त दुःखी हो उठे। उनके मुह से बस इतना ही प्रस्फुटित हो सका—र स क पू र ।

“चलिये राजन् ! महल में चलिये।” अपने हाथ से फूलों से भरे थाल में से हसते हुए फूल बिखेरती हुई रसकपूर महाराजा के लिये मार्ग बनाने लगी।

महाराजा के महल में पहुँचने पर अन्य रानियों ने भी उनका स्वागत किया। उनके युद्ध-शस्त्रों को उतारा और उन्हें सहज वस्त्र धारण कराये।

जयराज ने महाराजा की थकावट उतारने के उद्देश्य से शाम को एक भव्य महफिल का आयोजन किया। परन्तु महाराजा ने महफिल स्थगित करवा दी। आज की शाम वे रसकपूर के साथ ही विताना चाहते थे।

संध्या को आरती से निवृत्त हो रसकपूर सीधे प्रियतमनिवास पहुँची, जहाँ महाराजा जगतसिंह बड़ी बेसब्री से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

रसकपूर ने देखा, मदिरा की सुराही वैसे की वैसे ही ढकी पड़ी है। गिलास भी ओंघे रखे हुए हैं। महाराज ने अभी तक मदिरा-पान शुरू नहीं किया था।

“क्या बात है राजन् ! अभी तक आपने प्याला अपने ओठो से नहीं लगाया ?”

“यह प्याला तुम्हारे स्पर्श का इंतजार कर रहा है, रस !”

रसकपूर मुस्करा पड़ी। उसने महाराजा के सिर पर फूलों की कुछ पखुडिया, जो वह मन्दिर से साथ ही ले आयी थी, फेंकी। फिर हाथ जोड़कर उसने आखें बन्द की और भगवान से महाराजा तथा प्रजा की मंगल-कामना करने लगी। महाराजा ने विस्तर पर आ पड़ी फूल की पखुडी को उठाकर अपने माथे से लगाया और अज्ञात शक्ति को श्रद्धा से नमन किया। महाराजा ने रसकपूर के जुड़े हुए हाथों को पकड़कर उसका ध्यान भंग किया। रसकपूर मुस्करा कर महाराजा की वगल में बैठ गयी। उसने चादी की तश्तरी में रखे चादी के प्याले को सीधा किया और उसमें सोने की सुराही से मदिरा उड़ेल दी। पहला प्याला उसने महाराजा जगत्सिंह के ओठो से लगा दिया। महाराजा ने एक ही घूट में गट-गट कर प्याला खाली कर दिया। रसकपूर को यह उतावलापन अच्छा नहीं लगा। उसने दुबारा प्याला भरा और महाराजा के हाथ में थमाते हुए बोली, “धीरे-धीरे, राजन् ! अभी तो रात शुरू भी नहीं हुई है।”

महाराजा ने रसकपूर की ठोड़ी को उठाते हुए कहा, “तुम्हारी पलकों में काजल लगते ही रात हो जाती है। फिर मदिरा का सम्बन्ध रात से नहीं, व्यक्ति के जज्बातों से होता है। तुम्हारे सान्निध्य मात्र से मेरे जज्बात उछाला खा जाते हैं।” थोड़ा रुक कर महाराजा बोले, “यह मदिरा तो मैं उस मदिरा को पीने के लिए शक्ति-सचय हेतु पीता हूँ, जिसे अभी मुझे पीना है।”

रसकपूर कुछ विस्मय में आ गयी, “ऐसी कौन-सी मदिरा है जो इस मदिरा के बाद पीनी है, राजन् ?”

“वह जो तुम अपनी आखों से पिलाती हो।”

महाराजा रसकपूर की आखों में झाँके जा रहे थे, रसकपूर ने शर्मति

हुए पलकें गिरा दी। वह मद-मद मुस्करानी हुई बोली, “क्या सचमुच मेरी आखें इतनी नशीली हैं ?”

महाराजा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उनके ओठ रसकपूर की पलकों के साथ जा लगे।

महाराजा जगतसिंह को सुरापन करते हुए दो घण्टों से भी अधिक हो चुके थे। रसकपूर ने महाराजा के ओठों पर अपना हाथ रख दिया और बोली, “अब बस कीजिये, राजन् ! आज आपने बहुत पी ली है।”

महाराजा ने रसकपूर की शखाकार बड़ी-बड़ी नीली आखों में झाँक कर देखा, सुरापन से आखें लाल अगूरी हो रही थी। उन्हें वहाँ एक बहुत बड़े कलाकार का छलक रहा अभिमान दिखाई दिया। उसके गुलाब की पखुडियानुमा पतले ओठ कुछ शुष्क हो उठे थे, जो उसके शरीर की ऊष्मा को दर्शा रहे थे। नशीली आखें लाल अगूरी होकर और भी फैल गयी थी। ऊष्मिन्त वक्ष तेजी से नीचे-ऊपर उठ-गिर रहे थे। हाथ की उगलिया सितार के तार की तरह काप रही थी। आचल कव का वक्षो से ढल कर महाराजा की गोद में गिर गया था। महाराजा ने गोद में पड़ी चुनरी को उठाकर रसकपूर के ओठ के नीचे ठोड़ी पर टिकी हुई दो मदिरा-बूंदों को पोछ दिया। रसकपूर समझ गयी, अब महाराजा की बाहे उसकी ओर बढ़ेंगी। वह शर्मावर अपने में सिमट गयी। कुछ क्षण और व्यतीत हो गये। महाराजा के हाथ रसकपूर की ओर नहीं बढ़े। रसकपूर ने धीरे में पलकें उठाकर महाराजा की ओर देखा। वे तिपाई पर पड़े घुघराओं की ओर देख रहे थे।

“पूरे छ महीने हो गये हैं, इन घुघराओं को बजते हुए देखे, रस ! आज हमें अपना नृत्य नहीं दिखाओगी ?”

“अवश्य राजन् !”

रसकपूर उठकर तिपाई की तरफ बढ़ी। दो कदम चलकर ही वह लडखडा कर मुह के बल गिर पड़ी। रसकपूर खिलखिला कर हस पड़ी।

महाराजा उठकर लडखडाते कदमों में रसकपूर के पास पहुँचे और

उसे उठाकर पास पड़ी तिपाई पर बैठा दिया । अगले ही क्षण रसकपूर अपने एक पाव में स्वयं घुघरु बाध रही थी और दूसरे पाव में महाराजा घुघरु बाध रहे थे ।

रसकपूर पूरी रात नाची । वह तब तक नाचती रही जब तक महाराजा की नजरे थक न गयी । महाराजा की नजरे थक गयी, पर रसकपूर के पैर नहीं थके ।

“बस ! अब और नृत्य नहीं ।” कहकर महाराजा ने रसकपूर को रोक दिया ।

वह पलंग पर आकर बैठ गयी ।

महाराजा ने सुराही में बची-खुची शराब दो प्यालों में डाली । एक प्याला रसकपूर के ओठों से लगाते हुए कहा, “बस ! आज की रात का यह आखिरी जाम है ।”

अपना प्याला उठाकर महाराजा ने रसकपूर से पूछा, “रसकपूर !”

“जी, राजन् ।”

“यह ससार, यह प्रकृति, यह सृष्टि कितनी सुंदर है ?”

“बहुत सुंदर है, राजन् ।”

“इश्वर ने हमारे सुख के लिए कितने साधन बनाये हैं ।”

“बहुत बनाये हैं, राजन् ।”

“पर कभी-कभी मनुष्य इन साधनों को विकृत कर देता है ।”

“नादानी से मनुष्य ऐसा करता है ।”

“परन्तु ऐसा क्यों करता है वह, रसकपूर ?”

“विवेकशून्य स्थिति में या परिस्थितियों के बेकाबू हो जाने पर ही मनुष्य ऐसा करता है ।”

“भगवान ने जिस वस्तु को प्रेम करने के लिए बनाया है, मनुष्य कभी-कभी उससे घृणा करने लगता है ।”

“अकस्मर ऐसा होता है ।”

“पर मैं तफरत में विश्वास नहीं करता ।”

“यह तो अच्छी बात है, राजन् ।”

“प्रेम करने में कितना सुख मिलता है ।”

“बहुत सुख मिलता है ।”

“अलौकिक सुख है प्रेम में, है न ।”

“हा ।”

“क्या प्रेम स्थायी होता है ?”

“हा, राजन् । प्रेम स्थायी होता है ।”

“हम दोनों भी तो एक-दूसरे को प्यार करते हैं ?”

“करते हैं, राजन् ।”

“क्या हमारा प्रेम भी स्थायी है ?”

“... ”

रसकपूर ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया । वह मौन रही ।

महाराजा ने पुन पूछा, “हमारा प्रेम स्थायी है न, रस ?”

“स्थायी ? ” रसकपूर बुदबुदाकर बोली, “प्रेम तो अमर होता है, राजन् ।”

“स्थायी भी होता है ।” महाराजा ने खुद ही अपने प्रश्न का उत्तर दिया, “तुम जीवन-पर्यन्त प्रेम निभाओगी न ?”

रसकपूर मौन थी ।

“निभाओगी न, रस ?” महाराजा ने रसकपूर को झकझोर कर पूछा, “नहीं निभाओगी क्या ?”

“मैं • मैं तो जन्मजन्मांतर के लिए आपकी हूँ, राजन् !”

महाराजा को राहत मिली । उन्होंने एक ही घूट में प्याले की बाकी मदिरा को कण्ठ से नीचे उतारा और पूछा, “अच्छा, यह बताओ, प्रेम की अंतिम परिणति क्या होती है ?”

“यह कोई नहीं जानता, राजन् ।”

महाराजा के चेहरे पर कुछ खिचाव-सा आ गया । वे प्रेम की अंतिम परिणति के सम्बन्ध में अपने विचार स्थिर करने लगे ।



जोधपुर पर विजय की खुशी स्थायी नहीं रह सकी ।

उदयपुर से समाचार आया, अनुपम सुदरी राजकुमारी कृष्णाकुमारी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है । कृष्णाकुमारी ने अपने उस सौन्दर्य को अभिशाप समझा, जिमकी वजह से इतनी खून-खराबी हो गयी थी ।

महाराजा इस समाचार से बहुत दुःखी हुए । वे यह सोचकर दुःखी थे कि जिसे पाने के लिए इतना बड़ा युद्ध लड़ा गया, अपने अनेक साथियों को उन्होंने खोया, वह इतनी जल्दी ही ससार को छोड़कर चली गयी ।

महाराजा इस सदमे को वर्दाश्त नहीं कर सके । उन्हें ज्वर रहने लगा । कुछ ही दिनों में वे गभीर रूप से अस्वस्थ हो गये ।

राजवैद्य ने महाराजा का उपचार शुरू किया । कई तरह की औषधियाँ महाराजा को दी गयीं, पर बेअसर सिद्ध हुईं । महाराजा का ज्वर उतर ही नहीं रहा था । वे पलंग पर लेटे-लेटे बुदबुदाते रहते—‘किसके लिए इतना बड़ा युद्ध लड़ा मैंने ? किसके लिए मैंने इतने योद्धाओं का खून बहाया ? आह कृष्णा ! तुम कहाँ चली गयी ? ’

महाराजा के चित्त को शान्ति देने के उद्देश्य में रसकपूर सुबह-शाम सितार लेकर भजन गाती रहती ।

महाराजा की बीमारी के लम्बी खिंच जाने से व्यवस्थित राजकाज अब पुनः अव्यवस्थित हो गया । उनकी लम्बी बीमारी का फायदा उठाकर कुछ सामन्तों ने मनमानी करनी शुरू कर दी । दूतों के सामन्त चादासिंह ने भी रसकपूर के खिलाफ पुनः जिहाद छेड़ दिया । प्रधानमंत्री सारी स्थिति पर नियंत्रण पाने में स्वयं को असमर्थ पा रहे थे ।

राजस्व में तेजी से गिरावट आने लगी । राजकोष पर भारी दबाव पड़ने लगा ।

उधर मराठों ने भी करवट बदल ली थी । जयपुर के साथ की गयी संधि को उन्होंने तोड़ दिया था । अमीरखा पिंडारी ने भी आखिरी तरेरनी शुरू कर दी । इस प्रकार आंतरिक दशा बिगड़ने के साथ-साथ बाह्य खतरा भी

उत्पन्न हो गया था ।

प्रधानमन्त्री ने सारी स्थिति पर विचार किये जाने हेतु महाराजा जगतसिंह से दरबार का आयोजन करने का अनुरोध किया । अस्वस्थता के बावजूद महाराजा ने इस बात को मान लिया और मुकुटमहल के अंदर ही सभागार में दरबार लगाया गया । रियासत के सभी प्रमुख सामन्तों को इसमें भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था ।

सभा में प्रधानमन्त्री ने सारी स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला । उन्होंने उपस्थित सरदारों को बताया कि हालांकि जोधपुर पर ऐतिहासिक विजयी पायी गयी है परन्तु यह विजय हमें बहुत महंगी पड़ी है । इस युद्ध में जहाँ अनेक योद्धाओं को खोना पड़ा है, वहाँ काफी बड़ी धनराशि से भी हाथ धोना पड़ा है । छह महीनों की इस लम्बी लड़ाई में काफी धन व्यय हुआ है । इधर प्राकृतिक प्रकोप भी हुआ है । अच्छी फसल न होने से राजस्व में भारी गिरावट आयी है । परिणामस्वरूप राजकोष पर इस समय भारी दबाव पड़ रहा है । इन आंतरिक हालातों के अलावा बाहरी हालात भी अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं । मराठों ने संधि तोड़ दी है और अमीरखा पिंडारी भी अब विश्वसनीय नहीं रहा है । मैं समस्त प्रमुखों से अनुरोध करता हूँ कि इन सारी परिस्थितियों पर, महाराजा के गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने की अवस्था में, गम्भीरतापूर्वक विचार करें ।

प्रधानमन्त्री के वक्तव्य के बाद सभी सामन्त विचार-विमर्श में लीन हो गये ।

सामन्त आपस में मन्त्रणा करने में लगे ही हुए थे कि डिग्गी के ठाकुर मेघसिंह ने खड़े होकर सबका ध्यान आकर्षित किया ।

महाराजा, रसकपूर और प्रधानमन्त्री मेघसिंह की ओर उन्मुख हुए ।

मेघसिंह ने सभा को सम्बोधित करते हुए अपने सुझाव रखे, “अन्न-दाता ! जो स्थिति बयान की गई है, वह वस्तुतः चिंतनीय है । हमें समस्या से निपटने के लिए दुहरी नीति अपनानी चाहिए । एक तो कुछ तात्कालिक कदम उठाये जाने चाहिए, जिनका मैं अभी विस्तार से वर्णन करता हूँ ।

दूसरा हमे उस जमींदोज खजाने को ढूँढ निकालना चाहिए जिसे हमारे पूर्वजो ने ऐसे ही आडे वेंकत मे काम आने के लिए गाडा था ।”

सभी सामन्त उत्सुकता के साथ डिग्गी के ठाकुर की बात सुन रहे थे ।

“राजराजेश्वर ! चूँकि खजाना ढूँढने मे समय लग सकता है, अतः हमे कुछ तात्कालिक कदम उठाने चाहिए । राजकोष के लिए प्रत्येक मामान्त से कुछ अशदान लिया जाना चाहिए तथा सेना को पुन शक्तिशाली बनाने के लिये हर सामन्त को अपने यहा प्रति एक हजार की आवादी पर पचास सैनिक तथा दस घुडसवार तैयार कर उनका खर्च वहन करना चाहिए ।

महाराजा, रसकपूर और प्रधानमंत्री को यह सुझाव मान्य था । परन्तु अन्य सामान्त मेघसिंह के इस सुझाव पर आपस मे मत्रणा करने लगे ।

एक सामन्त ने खडे होकर पुन सभा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया । उसने कहा, “अन्नदाता ! यदि आप क्षमा करें तो मैं एक सुझाव रखूँ ! हमे पता चला है कि कलकत्ते मे गोरों ने ‘ईस्ट इंडिया कम्पनी’ की स्थापना की है । इस कम्पनी के पास कुशल रणनीतिज्ञ तो हैं ही, साथ ही साथ आधुनिक शस्त्र-अस्त्र भी हैं । हमे इस कम्पनी से सधि कर लेनी चाहिए । इससे मराठों के दवाव को रोका जा सकता है ।”

इसके पूर्व कि महाराजा इस सुझाव पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते, रसकपूर बोल पडी, “कदापि नही ! क्या हमारा शौर्य समाप्त हो चुका है ? क्या राजपूती खून ठण्डा पड चुका है जो हमे अब मलेच्छ-रक्त की शरण लेनी होगी ?”

सभा मे मौन छा गया ।

अत मे डिग्गी के ठाकुर द्वारा दिये गये सुझावों पर अमल करने का निर्णय लेकर सभा विसर्जित हो गयी ।

सभागार से दूनी का सामन्त चादसिंह झिलाय के ठाकुर के साथ महाराजा से मिलने उनके निजी कक्ष मे गया । उस समय महाराजा

रसकपूर के साथ सभा में हुए फैसलो पर वार्ता कर रहे थे ।

दोनों सामन्तो के आने की सूचना चौबदार ने महाराजा को दी । महाराजा को सभा की समाप्ति के तत्काल बाद चादसिंह का आना कुछ आश्चर्यजनक लगा । उन्होंने चौबदार से उन्हें अन्दर भेजने को कहा ।

सामन्त चादसिंह ने आकर महाराजा को अभिवादन किया, फिर एक तीखी नजर रसकपूर पर फेंक कर महाराजा से बोला, “यदि अन्नदाता एकात वर्षों तो मैं कुछ अर्ज करूँ ।”

महाराजा जगतसिंह को यह बुरा तो लगा, परन्तु फिर उन्होंने चले जाने के अभिप्राय से रसकपूर की ओर देखा । रसकपूर चुपचाप उठकर पिछले कक्ष में चली गयी ।

“अन्नदाता ! अपराध क्षमा हो । आज सभा में राज्य की स्थिति का जो चित्र खींचा गया और जो सुझाव दिये गये, सब सम्योचित हैं । हम इन सुझावों पर अमल करेंगे । खजाने को ढूढ़ने के लिए हम विशेष रूप में प्रयत्न करेंगे । बाहरी सभावित आक्रमणों के मुकाबले के लिए हम अपनी सेना का पुनर्गठन करेंगे । हम चाहेंगे कि यह कठिन कार्य आप हम पर ही छोड़ दें ।”

“यानी कि ?”

“मतलब यह कि आप प्रधान सेनापति को आदेश दे दें कि वह मेरे कहे अनुसार सेना को संगठित करें । यदि सेनापति मेरे आदेशानुसार कार्य करते हैं तो हम अल्पावधि में ही सेना को सुसज्जित कर लेंगे ।”

महाराजा को सामन्त चादसिंह का यह सुझाव बुरा नहीं लगा । उन्होंने इसे तत्काल मान लिया ।

“और जमींदोज खजाने को ढूढ़ने का काम किसको सौंपा जाय ?”

‘यह भी अन्नदाता आप मुझ ही पर छोड़ दीजिये । मैं चार ऐसे विश्वसनीय सरदारों को इस कार्य के लिए नियुक्त करूंगा जिनके पूर्वजों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में खजाना जमींदोज किये जाते समय सम्बन्ध रहा है ।’

महाराजा को यह सुझाव भी बहुत उपयुक्त लगा। उन्होंने सेना के पुनर्गठन और खजाने की खोज, दोनों कार्यों का दायित्व सामन्त चादर्सिंह को सौंप दिया।

सामन्त चादर्सिंह ने बीजक की खोज पुनः पोथीखाना में शुरू करायी। स्वर्गीय महाराजा सवाई जयसिंह के निजी कक्ष के कुछ गुप्तस्थलों को भी टटोला गया।

बीजक की खोज के साथ-साथ सवाई जयसिंह के समय जमींदोज किये गये खजाने से सम्बन्धित सामन्तों के घरों में भी किसी सूत्र या संकेत पा जाने की दृष्टि से खोज की गयी।

खजाने के ढूँढ निकालने में अथक परिश्रम के बावजूद चादर्सिंह को कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

खजाना न मिलने से चादर्सिंह और महाराजा जगतसिंह दोनों को ही भारी निराशा हुई। जमींदोज खजाने से जयपुर राज्य को शक्तिशाली बनाकर रसकपूर के साथ सुख-चैन से दिन बिताने के महाराजा जगतसिंह के मसूवे ध्वस्त हो गये। अठ्ठाईस वर्षीय महत्वाकांक्षी महाराजा जगतसिंह ने चादर्सिंह के असफल हो जाने के बावजूद प्रधानमंत्री को जमींदोज खजाने को निरन्तर ढूँढते रहने का आदेश दिया।

खजाना ढूँढे जाने में महाराजा, प्रधानमंत्री और प्रमुख सामन्त इतने व्यस्त हो गये थे कि राजकाज के संचालन की किसी को सुध-बुध ही नहीं रही। इसका फायदा उठाकर कुछ मुखिया मनमानी करने लगे और अधिकारी स्वच्छंद होकर आचरण करने लगे। सूखा पड़ जाने से जनता वैसे ही तकलीफ में थी, तिस पर अधिकारियों के अत्याचार, लोगों की अनेक शिकायतें जमा होने लगी।

राज्य को आर्थिक रूप में सुदृढ़ करने की आखिरी किरण जमींदोज खजाने के न मिल पाने में चादर्सिंह पुनः उखड़ गया और उसने रसकपूर के खिलाफ दुबारा जिहाद छेड़ दिया। वह रसकपूर को निहायत अपशकुनी नारी बताकर जनता में उसके विरुद्ध घृणा फैलाने लगा।

चादसिंह और उसके समर्थको ने महाराजा को कहला भेजा कि जब तक रसकपूर राजमहल में रहेगी, वे महाराजा से कोई सहयोग नहीं करेंगे ।

इस चेतावनी से महाराजा जगतसिंह बहुत क्षुब्ध हो उठे । विपद्-काल में असहयोग की बात उन्हें काफी कष्टदायक लगी । उधर गुप्तचरो की सूचना थी कि मराठे जयपुर पर आक्रमण करने की जोरदार तैयारियां कर रहे हैं । इस दुष्काल में चादसिंह की जिद महाराजा को सहन नहीं हुई । उन्होंने रसकपूर के मामले को अन्तिमरूप में निपटा देने की एक योजना बनायी और इसके लिये राजसभा आमंत्रित की ।

प्रधानमंत्री ने अपने विशिष्ट अनुयायियों द्वारा पूरे शहर में जोरदार चर्चा फैला दी कि महाराजा सभा में एक विशेष घोषणा करने वाले हैं । सारे शहर में और सामन्तवर्ग में इस घोषणा के प्रति भारी उत्सुकता जाग्रत हो गयी ।

निश्चित दिवस पर सभा का आयोजन हुआ ।

समागार में सामन्त, सरदार, जागीरदार प्रधानमंत्री, मुखिया, अधिकारी तथा शहर के प्रमुख आमंत्रित विशिष्टजन समय से पूर्व ही आ पहुँचे थे । आज की सभा में गुप्तचरो के मुखिया और सेना के प्रधान को भी आमंत्रित किया गया था । ये दोनों एकांत में अपने स्थान पर बैठे गंभीर मन्त्रणा कर रहे थे, जबकि अन्य लोग सभांत्रित घोषणा का अनुमान लगा रहे थे ।

चोबदार की आवाज गूजी और सभा में उपस्थित जन शांत हो गये ।

“वाअदव, वमुलाहिजा होशियार । राजराजेन्द्र महाराजाधिराज सवाई जगतसिंहजी बहादुर पधार रहे हैं ”

सभा में महाराजा रसकपूर के साथ पधारे ।

महाराजा के स्थान ग्रहण कर लेने के बाद सामन्त बैठने लगे । कुछ सामन्त तो तब तक न बैठे, जब तक महाराजा के बाद रसकपूर ने भी अपना स्थान ग्रहण नहीं कर लिया । महाराजा ने ऐसे सामन्तो को

मुस्कराकर प्रोत्साहित किया। चादसिंह की तीखी नजरें उन सामन्तों की ओर मुड़ी।

परम्परानुसार सभा में पहले राजकाज निपटाया गया। फिर कुछ फरियादी मामले उठाये गये।

अन्त में महाराजा ने सभा को उद्बोधन किया, “सभासदों! कुछ दिनों से मेरे पास गिकायतें आ रही हैं कि राज्य के कुछ अधिकारी स्वच्छंद आचरण कर रहे हैं। मनमानी हो रही है। प्राकृतिक प्रकोप से दुखी जनता को इससे काफी कष्ट हो रहा है। उधर, बाहरी खतरा भी बढ़ गया है। मराठों और अमीरखानों ने फिर से उत्पात मचाना शुरू कर दिया है। बड़े पैमाने पर किसी बाह्य आक्रमण के हो जाने का खतरा दिखाई दे रहा है। इसलिए अन्दरूनी और बाहरी खतरों से निपटने के लिये आज हममें एकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। मैं देख रहा हूँ, रसकपूर को लेकर सामन्त दो खेमों में बंट गये हैं। यह विभाजन राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है। मैं भी इस विग्रह से अब बहुत तंग आ चुका हूँ। अतः मैं आज रसकपूर के मामले को अन्तिम रूप से निपटा देना चाहता हूँ।”

सामन्तों की उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँच गयी। दूनी के सामन्त चादसिंह ने अपनी मूँछों पर हाथ फेरा और मन्द-मन्द मुस्कराने लगा। चादसिंह के समर्थक सामन्त, चादसिंह को मुस्कराता हुआ देखकर सभावित विजय से प्रसन्न होकर आपस में एक-दूसरे से आँखों ही आँखों में बातियाँ लगे।

महाराजा बोलते गये, “रसकपूर इस राजमहल में रह रही है। उसे रहते हुए भी काफी समय हो गया है। इस प्रकार से वह राजमहल की व्यवस्था का अंग ही बन चुकी है। राजकाज में भी उसकी बातें अनेक बार अत्यन्त उपयोगी समझी गयी हैं। युद्धकाल में तो मेरी अनुपस्थिति में रसकपूर ने ही जयपुर को सुरक्षित रखा था। उसने अनेक बार अपने विलक्षण विवेक का परिचय दिया है। और अब रसकपूर मेरे इतना

निकट आ चुकी है कि उसके बिना मैं स्वयं अस्तित्वहीन हो जाता हूँ। अतः राजमहल में वह साधिकार रहने की अधिकारिणी हो चुकी है। पर चूँकि वह राजवंश से सम्बन्धित नहीं है, इसलिए कुछ सामन्तों को उसके आगे सिर झुकाने में या अपनी बात कहने में शिश्क होती है। मैंसे बहुत सोच-विचारकर इसका हल निकाल लिया है। रसकपूर को राजमहल में स्थापित करने के लिए जल्दारी है कि उसे राजवंश से जोड़ा जाये। अतः मैं घोषणा करता हूँ कि आज से जयपुर के आधे राज्य की मालिक रसकपूर होगी। मैं आधा जयपुर रसकपूर को समर्पित करता हूँ।”

महाराजा जगतसिंह की इस घोषणा से सभा में सन्नाटा छा गया। अब तक मुस्करा रहे चार्दसिंह और उसके समर्थक सामन्तों के चेहरे पर हवाइया उड़ने लगी। एक दूसरे को आँखों से सकेत कर रहे सामन्त अब एक दूसरे को आँखें फाड़कर देखने लगे।

प्रधानमंत्री ने औपचारिकता निभायी। उन्होंने आधा राज्य रसकपूर के नाम किये जाने का लिखित घोषणा-पत्र पढ़कर सभा में सुनाया और सब की उपस्थिति में उस फरमान पर महाराजा से हस्ताक्षर भी करा लिये।

एक निस्तब्धता के साथ सभा विसर्जित हो गयी।

रसकपूर को महाराजा जगतसिंह द्वारा आधा राज्य सौंप दिये जाने के बाद रसकपूर बाकायदा ‘पटरानी’ बनकर राज्य करने लगी। उसके शासन में अधिकांश उन्हीं सामन्तों के ठिकाने थे जो चार्दसिंह के नेतृत्व में उसका विरोध करते रहे थे। अब तक रसकपूर के अस्तित्व को नकार कर चल रहे इन सामन्तों को मानसिक रूप से लकवा-सा मार गया। अब तो उनकी मालकिन, स्वामिनी, भाग्यनिमात्री रसकपूर ही थी। वह अब किसी की जागीर छीन सकती थी और चाहे जिसे जागीर सौंप सकती थी।

किन्तु रसकपूर ने ऐसा कोई भड़काने वाला काम नहीं किया। उसने न किसी विरोधी सामन्त की जागीर छीनी और न ही किसी अपात्र व्यक्ति को जागीर दी। बल्कि उसने चार्दसिंह का हृदय जीतने की दृष्टि से उसे

अपने राज्य का प्रमुख बनाना चाहा, पर चादसिंह ने अस्वीकार कर दिया।

पासा उल्टा पड़ गया था। जहा महाराजा जगतसिंह रसकपूर को आधे जयपुर की स्वामिनी बनाकर सुस्थापित करना चाहते थे, वहा अब तक रसकपूर को राजमहल मे वर्दाश्त कर रहे वे सामन्त भी उखड़ गये। उन्होंने भी सामन्त चादसिंह के स्वर-मे-स्वर मिला दिया। जनता मे भी इस घोषणा का स्वागत नही हुआ। जयपुर शहर मे जोरो से कानाफूसी शुरू हो गयी। मुखिया और अधिकारीगण तो बाकायदा प्रधानमंत्री को पदच्युत करने के प्रयास मे जुट गये। इनका मानना था कि रसकपूर को इस हद तक पहुचाने मे प्रधानमंत्री द्वारा महाराजा को दिया गया सहयोग ही था।

मराठो के पास जयपुर की विगड़ रही आन्तरिक और आर्थिक दशा की सूचनाएँ बराबर पहुच रही थी। मराठो ने एक विशाल सेना तैयार की और जयपुर पर आक्रमण करने के लिए कूच कर दिया। राजनीति मे मौके का फायदा न उठाने वाले को मूर्ख ही कहा जाता है।

गुप्तचरो ने कोटा के पास मराठो की भारी सेना के जमाव की सूचना महाराजा को दी। स्थिति ने बहुत भयकर रूप ले लिया था। महाराजा ने तुरन्त युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दी। उन्होंने सहयोग के लिए दूनी के सामन्त चादसिंह को भी बुलाया, परन्तु वह अस्वस्थ होने का बहाना करके महाराजा द्वारा बुलायी गयी आपातकालीन बैठक मे भाग लेने नही आया। चादसिंह के नाम जयपुर की सुरक्षा का आदेश छोडकर महाराजा जगतसिंह सेना लेकर स्वयं निकल पडे।

महाराजा जगतसिंह मराठो की सेना की शक्ति एवं युद्धकौशल से परिचित थे, इसलिए अपनी सहायतार्थ उन्होंने मेवाड की सेना भी बुला ली।

कोटा के पास जयपुर-मेवाड-कोटा-बूंदी की सम्मिलित सेना और मराठो की मेना मे घमासान युद्ध छिड़ गया। महाराजा जगतसिंह के अद्भुत शौर्य प्रदर्शन के बावजूद चार राज्यों की संयुक्त सेना भी मराठो

के युद्ध चातुर्य से हार गयी।

महाराजा जगतसिंह ने मराठो को युद्ध का मनवाहा खर्च और भारी जुर्माना देना स्वीकार किया और अपनी पराजय मान ली।

जयपुर में पराजय की खबर पहुचते ही मातम छा गया।

चादसिंह की अध्यक्षता में शीर्ष सामन्तो की एक गुप्त बैठक हुई। बैठक में जयपुर की अधोगति का कारण रसकपूर को घोषित किया गया, और इस काटे को सदैव के लिए समाप्त कर देने के लिए चादसिंह को कहा गया।

रात के तीसरे पहर चादसिंह के नेतृत्व में कुछ सामन्त सैनिक लेकर मुकुटमहल पहुचे, जहाँ रसकपूर महाराजा जगतसिंह के वियोग में पलंग पर पड़ी तड़प रही थी। उसे अभी तक नीद नहीं आयी थी। वह हर आहट पर महाराजा के आने की कल्पना करती। बार-बार परिचारिकाओं से महाराजा के लौट आने का संदेश पूछ रही रसकपूर सामन्तो के इस पड़्यन्त्र से एकदम बेखबर थी।

सामन्तो ने आकर मुकुटमहल को घेर लिया और द्वारी का सामन्त अपने साथियों के साथ महल के अन्दर प्रविष्ट हुआ।

“कौन ?” रसकपूर ने वही से ऊँची आवाज में पूछा।

“मैं हूँ—चादसिंह।”

“आप ?” इतनी रात में ? आपकी यहाँ आने की हिम्मत कैसे हुई ?”

“मैं आपको गिरफ्तार करने आया हूँ।”

“खामोश ! अधम !” रसकपूर ने जोर से आवाज लगायी, “अरे, कोई है ? इसे पकड़कर ले जाओ और सीखचो में बंद कर दो।”

रसकपूर के आदेश का पालन नहीं हुआ। द्वार पर खड़े प्रहरी अंदर नहीं आये।

“अरे, तुम सुन क्यों नहीं रहे हो ? मैं कह रही हूँ, चादसिंह को गिरफ्तार कर लो।”

अहरियो से कोई उत्तर नहीं मिला रसकपूर को। वह तिलमिला कर रह गयी।

एक बार पुन उसने चिल्लाकर सुरक्षा-प्रहरियो को पुकारा, पर वे अदर नहीं आये। रसकपूर चादसिंह का पड्यत्र समझ गयी। वह निढाल होकर अपने पलग पर गिर पड़ी।

एक सामन्त ने मशाल जलाकर कमरे में रोगनी की। चादसिंह ने रसकपूर की वाह पकड़ी और उसे मुकुटमहल से बाहर ले आया।

रसकपूर को सम्पूर्ण वैभव के साथ नाहरगढ किले में, जहा सिर्फ वदी राजाओ को कैद रखा जाता था, कैद कर दिया गया।

रसकपूर को गिरफ्तार कर लेने के बाद सामन्तो ने राजमहल पर भी एक प्रकार से कब्जा कर लिया। प्रधानमंत्री को एकदम पगु बना दिया और उनके आदेशो की पालना उन्होने रुकवा दी। प्रधानमंत्री मजबूर हो चुपचाप अपने निवास पर आराम करने लगे। सामन्तो ने महाराजा द्वारा रसकपूर के नाम किये गये आधे राज्य के फरमान को फाड़ डाला और उसके नाम का चल रहा सिक्का रुकवा दिया।

पराजित महाराजा जब जयपुर लौटे, तो उन्हें यह मर्मभेदी समाचार मिला। सामन्तो द्वारा की गयी कार्यवाही को जहर के घूट की तरह पी लेने के अलावा उनके पास कोई चारा नहीं था। वे इस समय एकदम अवश और गक्तिहीन हो चुके थे। युद्ध की पराजय से जहा उन्होने अपनी प्रतिष्ठा खो दी थी, वहा आर्थिक दृष्टि से जर्जर राज्य अब विकट अर्थाभाव के सकटो से जूझ रहा था। युद्ध का खर्चा और जुमना भी तो समय पर मगठो को पहुँचाना था। इस सबके लिए सामन्तो का सहयोग आवश्यक था। विवश होकर सारी बातें सुनकर भी महाराजा को चुप रह जाना पडा।

चाहते हुए भी महाराजा ने रसकपूर को नाहरगढ किले की कैद से मुक्त नहीं कराया। सामन्त चादसिंह ने महाराजा से माफ-साफ कह दिया था कि यदि रसकपूर को वापस राजमहल में लाया गया तो महाराजा को

इसके लिए गभीर परिणाम भुगतने होंगे। महाराजा जगतसिंह गभीर परिणाम का मतलब समझते थे, अतः रसकपूर के मामले में उन्होंने चूप्पी साध लेना ही उचित समझा।

रसकपूर की मुक्ति के लिए महाराजा द्वारा जोर न दिये जाने से सामान्त उल्टा खुश हुए और वे 'अर्थ' जुटाने में लग गये, जिससे मराठों को समय पर भुगतान दिया जा सके।



रसकपूर के अभाव में तड़प रहे महाराजा ने एक दिन अपने मन की तसल्ली के लिए रसकपूर का हाल पुछवाना चाहा। उन्होंने इसके लिए जयराज को बुलवाया। जयराज विश्वसनीय व्यक्ति तो था ही, साथ ही उसके सभी सामान्तों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों से सम्बन्ध अच्छे थे। नाहरगढ़ किले में जाकर रसकपूर से मिलने में उसके लिए किसी विशेष कठिनाई की सम्भावना नहीं थी।

महाराजा की बात समझकर जयराज अपनी सितार लेकर नाहरगढ़ किले में पहुँचा। वह स्वयं भी रसकपूर की हालत जानने के बारे में बहुत उत्सुक था। महाराजा द्वारा यह कार्य सौंपे जाने से वह उल्टा प्रसन्न हो हुआ था।

एक विभाग का मुखिया होने के नाते उसका स्तर मन्त्रीपद के समकक्ष था। इसलिए प्रारम्भिक द्वारों के प्रहरियों ने जयराज को नहीं टोका। परन्तु जहाँ रसकपूर कैद थी, वहाँ महल के द्वारपाल ने जयराज को अंदर प्रवेश करने से रोक दिया।

जयराज द्वारपाल से वहस करने लगा। वह उसे समझाने लगा कि एक ऐसे 'राग' को जिसे स्वयं रसकपूर ने ईजाद किया है, उसके लिए सीख लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा वह 'राग' भी सदा के लिए रसकपूर के साथ ही चला जायेगा। परन्तु द्वारपाल टस-से-मस नहीं हुआ।

हल्ला-गुल्ला सुनकर वहाँ चादसिंह आ गया। उसने जयराज की बात सुनकर, उसे रसकपूर के पास जाने की इजाजत दे दी।

जयराज को देखते ही रसकपूर खुशी से उछल पड़ी। उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी, “महाराजा अभी लौटे नहीं क्या ! वे कब लौट रहे हैं ? उन्हें गायद दुराचारियों के कृत्य का अभी पता नहीं चला होगा ! जैसे ही वे सुनेंगे, चादर्सिंह को जरूर सजा देंगे। इन आततायियों को वे पूरा सवक सिखायेंगे ! जल्दी बताओ, जयराज ! कब लौट रहे हैं महाराजा ?”

जयराज सताप ने चेतना खो बैठा। सितार एक ओर रखकर वह चुपचाप बैठ गया।

“अच्छा ! यह सितार भी लाये हो ? ठीक ही किया तुमने ! मुझे भी नाचे बहुत दिन हो गये हैं। तुम सितार बजाओ, आज मैं एक नये नृत्य का अभ्यास करूंगी। महाराज थके-मादे आयेंगे तो मैं उन्हें यही नया नृत्य दिखाऊंगी। नया राग और नये नृत्य में मैं उनकी तमाम थकावट कुछ क्षणों में ही दूर कर दूंगी ! कब आ रहे हैं महाराजा ?”

जयराज चुपचाप गभीर मुद्रा में बैठा रहा।

रसकपूर ने सितार हाथों में ले लिया और स्वयं ही उसकी उगलिया तारों पर फिरने लगी, “उनका कोई समाचार तो आया हागा ? तुम कुछ बोलते क्यों नहीं ?” रसकपूर की उगलिया रुक गयी, सितार के तार भी खामोश हो गये। जयराज की अत्यधिक गभीरता से वह घबरा उठी, “जयराज ! तुम इतने गभीर क्यों हो ? तुम कुछ बोल क्यों नहीं रहे हो ?” वह जयराज को झकझोर कर पूछने लगी, “बोलो जय ! बोलो ! मैं नहीं घबराऊंगी। महाराजा की क्या खबर है ? वे मकुशल तो हैं न ? कब लौट रहे हैं वे ?”

“वे लौट आये हैं।” बड़ी मुश्किल से जयराज कह पाया।

माश्चर्य रसकपूर ने दुहराया, “वे लौट आये हैं ?”

“हां !”

“फिर . फिर भी ”

“फिर भी वे तुमसे दूर रहने को विवश है।”

“विवश हैं ? ऐसा क्यों ?”

“वे युद्ध में हारकर लौटे हैं। धन-जन का भी बहुत नुकसान हुआ है। मराठों को युद्ध का खर्चा और भारी जुर्माना अभी चुकाया जाना है। राज-कोष में इतना धन है नहीं। इसलिए महाराजा को सामन्तों पर आश्रित होना पड़ रहा है। वे उन्हें नाराज या बागी बनाकर तुमसे नहीं मिल सकते। पर उनकी आखों में रात-दिन तुम्हारी ही छवि बनी रहती है। उनके मन में हर घड़ी तुम्हारे मिलन की तड़प रहती है। उन्होंने ही मुझे तुम्हारा कुशल-क्षेम पूछने के लिए यहाँ भेजा है। यह सितार तो मैं मात्र वहाने के लिये साथ लाया हूँ।”

रसकपूर की आह निकल गयी। उसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

जयराज ने रसकपूर को ढाढस बधाया। उसे आशा दिलायी कि जैसे ही महाराजा परिस्थितियों से उभरेंगे, उसे वापस राजमहल में बुला लेंगे।

जब रसकपूर कुछ सहज हुई तो बोली, “क्या आर्थिक स्थिति ठीक होते ही महाराजा पुनः मुझे राजमहल में बुलवा लेंगे?”

“अवश्य बुलवा लेंगे। वे स्वयं आकर तुम्हें यहाँ से ले जाएंगे। अभी तो वे एकदम विवश हैं।”

“तो.. तो तुम मेरा एक काम करो। सिर्फ एक काम। मैं मैं जिंदगी भर तुम्हारे इस एहसान के लिए कृतज्ञ रहूँगी।”

“बताओ, मुझे क्या करना है?”

“तुम किसी प्रकार से मुझे यहाँ से बाहर निकाल दो। मैं मैं उस खजाने की खोज करूँगी जो महाराजा सवाई जयसिंह में आज ही के लिए जमींदोज किया था। मैं खजाने को ढूँढ़कर रहूँगी। तब ही तब ही मेरा प्रियतम मुझे वापस मिल सकेगा।”

“यह बड़ा ही कठिन कार्य है, रसकपूर। तुम यह नहीं कर पाओगी, तुम्हारा सारा जीवन इसमें खप जायेगा तब भी सफलता बहुत दूर होगी।”

“यहाँ भी तो जीवन सड़ रहा है। बाहर जाकर प्रयास करने में क्या

नुकसान है, जय ! मुझे सिर्फ एक बार आजाद कर दो । मैं तुम्हारे ”

“नहीं नहीं ! ऐसा मत कहो । अच्छा ! मैं तुम्हें आजाद किये जाने का कोई उपाय सोचता हूँ ।”

कुछ देर तक सोचने के बाद जयराम ने सितार उठाया ।

‘रसकपूर ! आज तुम्हारा इम्तिहान तुम खुद लोगी ! जितना अच्छा गा सकती हो, गाओ ! देर रात तक मैं सितार बजाऊंगा और तुम गाओगी । आज ऐसा गाओ कि सब सुनने वाले मस्त होकर झुमने लगें । उसके बाद ही मैं तुम्हें अगला कदम बताऊंगा ।’

जयराम ने सितार बजाना शुरू किया । और रसकपूर ने गाना । देर रात तक दोनों कलाकार अपने फन से नाहरगढ़ किले को गुजाते रहे ।

आधी रात बीत चुकी थी । प्रहरी मधुर गायन सुनते-सुनते सुध-बुध खोकर ऊधने लग गये थे ।

जयराम ने तुरन्त अपने कपड़े खोलने शुरू किये । उसने अपने कपड़े रसकपूर को पहिना दिये और स्वयं रसकपूर के वस्त्र पहिन लिए ।

यही उपयुक्त अवसर था । रसकपूर चुपचाप सितार लेकर जयराम के वेश में बाहर निकल आयी । अंधेरे में ऊध रहे प्रहरियों ने, जिन पर अभी तक सगीत का नशा छाया हुआ था, रसकपूर को जयराम समझकर रोका-टोका नहीं । रसकपूर किले के बाहर आ गयी । वह सीधे जंगल की ओर भाग गयी ।

जयराम ने रसकपूर के चले जाने के बाद अपना सिर जोरो में दीवार ने टकरा-टकराकर अपने को घायल कर लिया, ताकि सुबह उसे देखकर यही समझा जाये कि रसकपूर ने उसे घायल कर वस्त्र बदल लिए और स्वयं फरार हो गयी ।



नाहरगढ़ किले की कैद से फरार हो जाने के तीन वर्षों बाद तक रसकपूर की कोई खोज-खबर नहीं मिली । जयराम ने काफी प्रयत्न किये, परन्तु रसकपूर का कहीं पता नहीं चला ।

महाराजा जगतसिंह रसकपूर के बिछोह से बेहाल हो गये। युवा महाराजा इस आघात को बर्दाश्त नहीं कर सके। उनका मानसिक एवं शारीरिक ह्रास शुरू हो गया। महाराजा की सोलह रानिया और उनके सम्बन्धी भी इसे रोक नहीं पाये।

महाराजा का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता चला गया। राजवैद्य ने कई तरह के उपचार किये, पर महाराजा पर औषधियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

आज रसकपूर को नाहरगढ़ किले से गये पूरे तीन वर्ष हो चुके थे। महाराजा की रुक-रुककर चल रही मासों रह-रहकर रसकपूर को पुकार उठती।

पूरा दिन महाराजा ने बड़ी बेचैनी से गुजारा। राजवैद्य निराश हो चुका था।



अमावस की रात होने के कारण परकोटे के सब द्वार सूर्यास्त होते ही बन्द कर दिये गये थे। रात का पहरा शुरू हो गया था। परकोटे पर बने गुम्बजों और बुर्जों पर खड़े प्रहरी आवाज लगाकर सुरक्षा का दायित्व निभा रहे थे।

रात्रि के ठीक दूसरे पहर में किसी नारी-आकृति ने एक द्वार पर आकर दस्तक दी। उसके हाथ इतने शक्तिशाली नहीं थे कि वे कोई भारी आवाज पैदा कर सकते। फिर रात में किसी भी सूरत में द्वार न खोले जाने का सख्त आदेश भी था। रसकपूर पास के पेड़ के नीचे बैठ गयी और सुबह का इन्तजार करने लगी।

वैसे तो द्वार सूरज की पहली किरण के साथ ही खोल दिया जाता था परन्तु आज अस्वाभाविक रूप से द्वार काफी विलम्ब से खुला।

द्वार खुलते ही रसकपूर दौड़कर अन्दर जौहरी बाजार में आ गयी और फिर सीधा सब्जीमण्डी जाकर जयराज के निवास पर पहुची।

सब्जीमण्डी में जयराज के मकान तक पहुचने के बीच कोई भी

रसकपूर को नहीं पहिचान पाया। तीन वर्षों में उसने अपनी सारी श्री खो दी थी। खूबसूरत आखें गहरे गडो में धस गयी थी। रेशम-सरीखे उसके लम्बे बाल रुखी लटो में बदल गये थे। शारीरिक सुडीलता के नाम पर सूखी खाल से ढकी हड्डिया-भर रह गई थी।

अजमेरी द्वार से जौहरी बाजार तक आते समय रसकपूर को सड़क पर कोई व्यक्ति दिखायी नहीं दिया। आकाश में चारों ओर कौए उड़कर काव-काव का शोर मचा रहे थे। सारा वातावरण मनहूसियत लिये हुए था।

उसने आकर जयराज के आवास पर जोर-जोर से दस्तक दी।

जयराज बाहर आ गया। पहले तो उसने रसकपूर को पहिचाना ही नहीं और फिर पहिचानते ही उसकी आखों से आसू बहने लगे।

“तुम मेरी हालत देखकर रो रहे हो न ? अब कोई चिंता नहीं। मैं भी ठीक हो जाऊंगी और महाराजा भी। जयराज ! मैंने खजाने का पता लगा लिया है। अब महाराजा सम्पन्न राजा हो जायेंगे। मुझे पुन राज-महल में ले जायेंगे। अब वे ‘विवश शासक’ नहीं रहेगे।”

जयराज ने दोनों हाथों से रसकपूर के कंधों को पकड़ा और कुछ क्षण-पर्यन्त उसके कातिहीन चेहरे को देखता रहा। फिर बोला, “रसकपूर ! तुम कुछ क्षण विलम्ब से पहुँची हो। महाराजा आज सुबह ही चल बसे। अब वे इस ससार में नहीं हैं।”

“क्या ” कहकर रसकपूर ने एक चीख मारी और बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी।

जयराज ने द्वार पर पड़ी बेहोश रसकपूर को उठाना चाहा, पर उसके हाथ वापस लौट आये। वहाँ अब सिर्फ शरीर पड़ा था, प्राण-पछी उसी समय उड़ गया था।

“अभागी ! आना ही था तो दो पहर पहले आ जाती ! खजाना ढूँढा भी तो तुमने चंद लहमों की देर कर दी।”

महाराजा चले गये। रसकपूर चली गयी ! रसकपूर के साथ ही खजाने का रहस्य भी चला गया।

मुझे सब याद आ चुका था। रूपसी अब मेरे लिए अजनबी नहीं थी। मैंने पूर्ण आत्मीयता के साथ रूपसी से कहा, “मुझे सब याद आ गया है, रसकपूर। उस दिन महाराजा के साथ-साथ तुम भी तो ससार छोड़कर चली गयी थी। खजाने का रहस्य, जो तुमने अथक प्रयास करके प्राप्त किया था, तुम्हारे जाने के साथ ही गुप्त रह गया था।”

“हा, मैंने महाराजा के लिए अनेक कष्ट सहकर बड़ी मुश्किल से खजाने का पता लगाया था। परन्तु मेरा दुर्भाग्य ! उस विपुल सम्पदा का उपभोग महाराजा नहीं कर पाये। काश, अगर वे सिर्फ एक दिन के लिए और जीवित रह पाते, तो खजाने को पाकर कितना खुश होते ! उनका वह लावण्ययुक्त वीरता दर्शाता मुखमंडल पुनः दीप्त हो उठता और वे मुस्कराकर प्रधानमंत्री और सामन्तों से कहते, “ले जाओ जितना धन चाहिए, और सेना को संगठित करके मराठों को ऐसा सबक सिखाओ, जिससे दुबारा इस ओर देखने का वे साहस भी न कर सकें। सचमुच महाराजा खजाना पाकर अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठते !”

“मैं समझता हूँ, खजाना पाकर वे उतना खुश नहीं होते जितना तुम्हें पाकर खुश होते। जानती हो रसकपूर ! उनकी आँखें हर पल तुम्हारी छवि देखने के लिए तरसती रही थी। स्वर्गलोक प्रस्थान के पूर्व तक चिर-निद्रा के लिए वन्द हो रही उनकी आँखों में निरन्तर तुम्हारी दर्शनाभिलाषा बनी रही। अन्त में घोर निराशा और दुःख के साथ ही उन्होंने अपनी पलकें बन्द की थी।”

“सुख तो उनके भाग्य में लिखा ही न था। होश सम्भालते ही उन्हें

मामन्तो के विरोध का सामना करना पड़ गया था। एक युद्ध से लौटते थे तो दूसरे युद्ध के लिए कूच करने की तैयारी में जुट जाते थे। एक दिन भी तो उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार नहीं जीया। मैं भी उन्हें वह सुख न दे पायी जिसके लिए वे वर्षों तक तरसते रहे।”

“इसमे तुम्हारा क्या कसूर है, रसकपूर। मनुष्य के जीवन में ‘भाग्य’ भी तो कुछ अर्थ रखता है। उनके भाग्य में सुख भोगना था ही नहीं।”

“हा, अन्यथा क्या वे मात्र वत्तीस वर्ष की आयु में ही स्वर्ग सिध्दार जाते। यह सब भाग्य का खेल ही तो है।”

“वह खेल तो कब का खत्म हो चुका, रसकपूर। फिर, तुम अब तक उनको ढूँढती हुई क्यों भटक रही हो? क्यों नहीं उस खजाने का रहस्य किसी अन्य पर उद्घाटित कर उसे इस धरती पर स्वर्ग-सा आनन्द प्रदान कर देती? अगर चाहो तो मुझ पर ही यह कृपा कर सकती हो और खजाने का रहस्य...”

आत्मा ने मुझे बीच में ही टोक दिया, “विल्कुल नहीं। यह असंभव है। उस खजाने का उपभोग सिर्फ महाराज जगतसिंह ही कर सकते हैं। तुम तो जानते ही हो कि इसी घन के अभाव के कारण उन्हें अनेक अत्याचार सहन करने पड़े थे, और फिर यदि इस खजाने का समय पर उन्हें पता चल जाता तो किसमे इतनी हिम्मत थी जो मुझे उनसे अलग कर सकता। नहीं जयराज, खजाने का रहस्य तो मैं महाराजा जगतसिंह के अलावा किसी को नहीं बताऊंगी। उन्होंने मुझसे वायदा भी तो किया था कि हर जन्म में वे मुझे मिलते रहेंगे। मुझे पूरा यकीन है कि वे अवश्य मिलेंगे। मुझमें मिले बिना वे रह ही नहीं सकेंगे, जयराज।”

महाराजा जगतसिंह के प्रति उसके विश्वास को देखकर मैं दग रह गया।

वह पुन बोली, “मुझ पर तुम्हारे पहले ही बहुत से एहसान हैं, जयराज। क्या एक एहसान और करोगे?” और मेरी स्वीकृति जाने बिना ही कहने लगी, “अनायाम ही अगर कही महाराजा जगतसिंह से तुम्हारा

सामना हो जाए तो उनसे कहना तुम्हारी 'रस' इन्हीं खण्डहरो मे तुम्हारी प्रतीक्षा मे भटक रही है।”

मैं हैरान मुद्रा मे आत्मा के मुह की ओर ताके जा रहा था। मुझे चुप देखकर उसने दुबारा कहा, “बोलो, जयराज ! करोगे न मेरा यह काम ?”

“लेकिन महाराजा जगत्सिंह के देहावसान को तो कई साल बीत चुके हैं। अब वे कहा और किस रूप मे होंगे, मैं उन्हें कैसे पहचान पाऊंगा।” मुझसे कहे बिना न रहा गया।

“नही, जय ! उनकी आत्मा भी मेरी ही तरह भटक रही होगी और जरूर मेरी ही तलाश कर रही होगी। जैसे मैंने तुम्हे खोज निकाला है, इसी तरह हो सकता है वे भी भटकते-भटकते कभी तुम तक पहुच जायें।”

इसकी सभावना पर सोचता हुआ मैं कुछ क्षण विचारो मे खोया खड़ा रहा।

एकाएक जब तन्द्रा टूटी तो देखा आत्मा जा चुकी थी।

मैंने 'रसकपूर' 'रसकपूर' कई बार जोर-जोर से पुकारा परन्तु खण्डहरो से टकराकर लौटी हुई आवाज के अलावा वहा कुछ न था।

अगले कई दिनो तक मैं लगातार उन खण्डहरो के चक्कर काटता रहा, परन्तु फिर कभी आत्मा से मेरा साक्षात्कार न हुआ। मैंने नाहरगढ़ किले के कोने-कोने मे तलाश की, जयगढ़ के आस-पास तथा पूर्व-जन्म के मकान का चप्पा-चप्पा छान मारा, परन्तु रसकपूर की आत्मा फिर कभी प्रकट न हुई।